एच एम वी एल प्रकाशन

कादम्बिनी

जुलाई, 2020 ■ ₹ 30

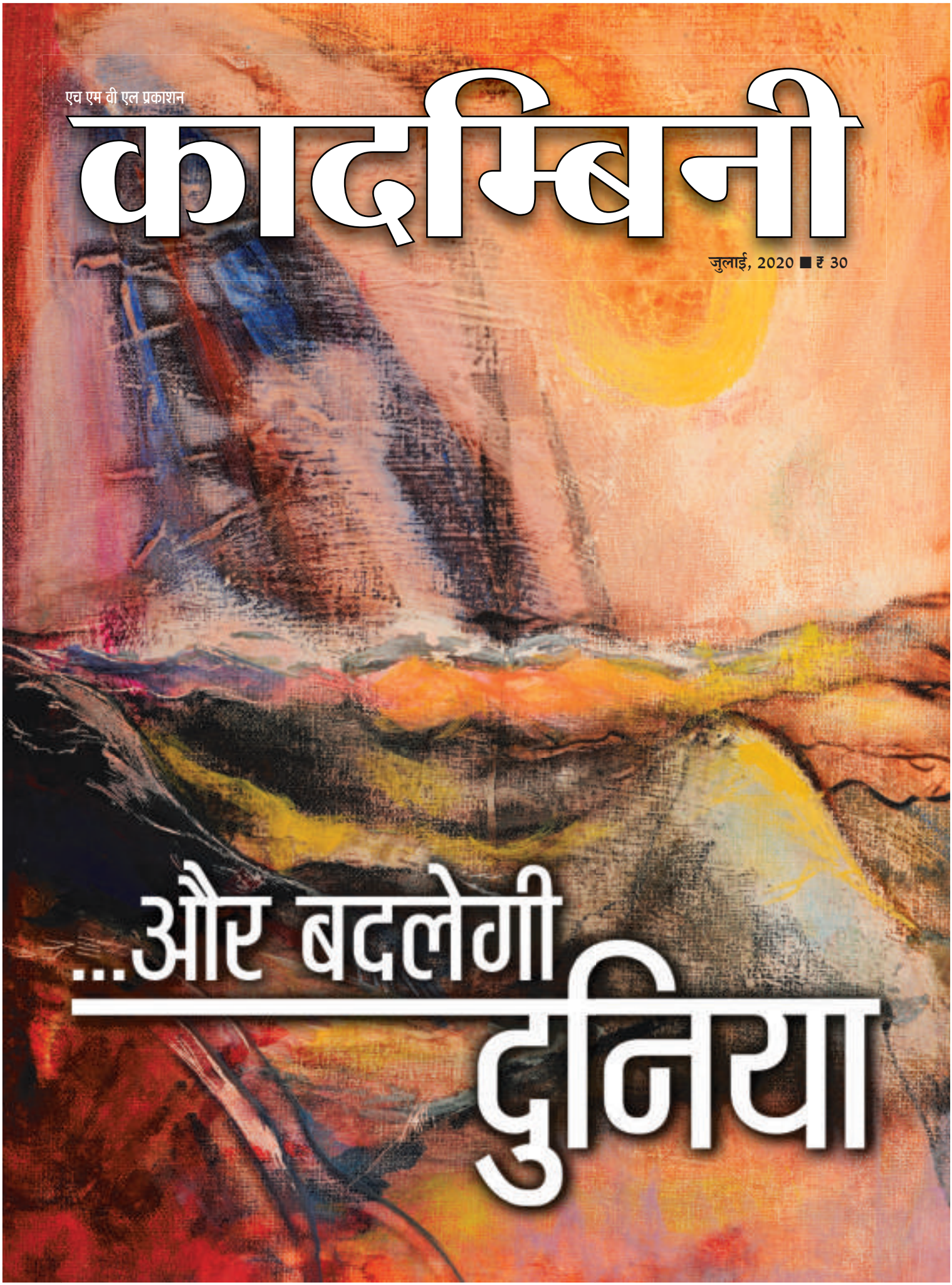

...और बदलेगी दुनिया

बदली-बदली-सी होगी यह दुनिया

कोरोना और लॉकडाउन से बहुत कुछ बदल रहा है। इनसान के रहन-सहन से लेकर उसके काम करने का ढंग तक बदला है। लॉकडाउन पूरी तरह खत्म होने के बाद हमारे सामने जो दुनिया होगी, वह बहुत कुछ नई-नई-सी और बदली हुई होगी। यह बदलाव कैसा होगा, यह तो आनेवाला समय ही बताएगा। लेकिन यह तय है कि अभी बहुत कुछ बदलेगा

किन बदलते रिश्तों की बात की जाए? इनसान से इनसान के रिश्ते? खून के रिश्ते? मालिक के मजदूर से रिश्ते, सत्ता और व्यवस्था के नागरिक से रिश्ते, इनसान के प्रकृति से रिश्ते?

मधु कांकरिया

लेखिका हूं इसलिए जिंदा किरदार और जिंदा कहानियों से समाज की तस्वीर खींचती हूं।

एक दृश्य!

नर्स दिल्ली के अस्पताल में है। तीन दिन के बाद अपनी बच्ची को देख रही है, वह भी दूर-दूर से। बच्ची रो रही है, वह मां के पास आना चाहती है, मां चाहकर भी उसे गोद में नहीं ले सकती, उसे प्यार नहीं कर सकती, बस दूर से उसे देख भर रही है। नर्स के आंसू टप-टप टपकते मास्क के नीचे इकट्ठे हो रहे हैं। मां से उसकी ममता को छीन लेनेवाला यह दर्द सभ्यता का कितना बड़ा दर्द है!

स्पर्श इनसान को मिली सबसे बड़ी नियामत है। जहां शब्द अर्थ खो देते हैं, वहां स्पर्श का बहुत अर्थ होता है। कोई सुबक रहा है उसके कंधे पर हाथ रख दें, बच्चा रो रहा है प्यार से उसे सहला दें। बुजुर्ग का चरण-स्पर्श...ये कुछ जिंदगी के वे रेशमी धागे हैं जो इनसान को इनसान से जोड़ते हैं।

लेकिन कोरोना कहता है—स्पर्श खतरनाक है। इनसान गाय, बैल, बकरी, चूहे, कीड़े...सबको छू सकता है, पर इनसान को नहीं।

यह पूरी सभ्यता पर आक्रमण है। हमारी सभ्यता सामूहिकता में, मेल-मिलाप में विश्वास करती है, हमारे पूर्वजों ने जिंदगी को बेहतर समझा था, इसलिए उन्होंने जीवन को एक उत्सव में बदला। मनुष्य को कहीं भी अकेला नहीं छोड़ा। पीड़ा हो या उल्लास, सब सांझा रहा। शादी हो, जन्म हो, मुंडन हो, मौत हो, हम कभी अकेले नहीं छूटे। हमारे पुरखों ने मनुष्य के उद्दाम आवेग को शमित रखने के लिए हमें रिश्तों की पवित्रता दी, सांझे चूल्हे दिए। सदियों की लंबी यात्रा के बाद अर्जित किया था हमने—'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयः' का महामंत्र, लेकिन कोरोना क्या आया सभ्यता और संस्कृति के सारे छिलके उतर गए!

एक आम दृश्य जो पिछले दिनों हिंदुस्तान की असली कहानी कह रहा था। जिसमें हजारों की संख्या में घरों की ओर लौट रहे थे प्रवासी मजदूर—टूटे भरोसे, भूखे पेट, थके पैर और मुर्दा मन लिए, जिनमे वृद्ध, बच्चे और गर्भवती महिलाएं तक शामिल थीं। जिनमें से अधिकांश निरक्षर और बहुत कम पढ़े-लिखे थे। जिनकी बेइंतिहा पीड़ा से हमारा उदारवादी वर्ग लगभग अनछुआ रहा। मीडिया उनके लिए नफरत बोता रहा। इन मजदूरों को अविवेकी, रोग के वैज्ञानिक आधार को न समझनेवाली एक अराजक भीड़ के रूप में देखा गया, जो सिर्फ उनकी दया की पात्र हो सकती थी। वे इनके लिए समान अधिकारों से संपन्न नागरिक तो थे ही नहीं।

इनमें से चलते-चलते एक मां स्टेशन पर मर गई और बच्चा उसके ऊपर पड़े कपड़े को खींचकर उसे उठाने की कोशिश कर रहा था।

एक मां मरी पड़ी है और बच्चा उसमें दूध खोज रहा था।

एक गर्भवती महिला ने रास्ते में ही बच्चा जणा, थोड़ी देर सुस्ताई और फिर चल पड़ी अपने नवजात को गोद में लेकर।

गिरते-मरते कुछ हजार पहुंचे अपनी मंजिल तक, कइयों ने बीच रास्तों में ही दम तोड़ दिया। मीलों की लंबी यात्रा के बाद जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ते, भूख-प्यास के मारे जब इनमें से कुछ कामगार पहुंचे अपने गांव में, तो अपने ही लोगों ने इन्हें अपने गांव के भीतर

हमें संवेदना ही बचाएगी

हाल की खबरों ने हमें भविष्य के लिए सचेत कर दिया है। साथ ही यह भी बता दिया है कि आनेवाला समय कैसे चलेगा। कोरोना ने हमें आईना दिखाया है कि अभी तक हमारी पशुता नहीं छूटी है, भले ही हम मंगल तक पहुंच गए हों। कई मामले ऐसे भी सामने आए, जहां वृद्ध संक्रमित को घर में अकेले छोड़ पूरा परिवार ही दूसरी जगह चला गया। एंबुलेंस की ओर बढ़ते कोरोना संक्रमित मरीज को लोगों ने हिकारत, दया और ऐसी बेधती नजरों से देखा, जैसे यह सामाजिक कलंक हो।

कोरोना का अवतरित होना अपने आप में एक चेतावनी है कि हमने मनुष्य और मनुष्येतर संसार की सारी मर्यादाएं तोड़ दी हैं। स्वाइन फ्लू, बर्ड फ्लू और अब कोरोना। क्या हैं ये सब? ये सब चीख-चीखकर कह रहे हैं कि इस सृष्टि में सबको जीने का हक है। यदि हमने मनुष्य और जीव-जंतुओं के बीच की दीवार को तोड़ दिया, तो अंजाम घातक होंगे। इतना गिर गए हम कि मुर्गी, गाय-बकरी से होते हुए चमगादड़ तक पर हाथ मारने लगे! सदियों पहले सोलजेनित्सिन ने कहा था—'सुंदरता ही संसार को बचाएगी'। सुंदरता से उनका मतलब यही था—करुणा, प्रेम, सहानुभूति, इनसानियत और पूरी सृष्टि के प्रति प्रेमभाव।

घुसने से ही मना कर दिया। मीडिया द्वारा फैलाया डर हवा में घुल गया था! भावशून्यता की बदबू चहुं ओर फैली थी। किसी ने सवाल नहीं उठाया कि कहां जाएंगे वे सर्वहारे? शब्द छोटे पड़ रहे हैं इस क्रूरता और पीड़ा को जामा पहनाते हुए।

सरकार देख रही थी। लोग देख रहे थे! जिंदगी ने अपनी न्यूनतम शर्मिंदगी भी खो दी थी।

देश की संसद मौन थी। सवाल पूछने की मनाही थी, पर सवाल है कि उठना नहीं छोड़ते। क्या ये देश के नागरिक नहीं हैं? क्या सत्ता और नागरिक का कोई रिश्ता बचा रह गया है? सवालों का सवाल यह भी, क्या इनके मालिकों ने संकट की इस घड़ी में निभाया कामगारों के साथ अपना मानवीय रिश्ता? क्या सरकार ने लॉकडाउन के पहले सोचा, क्या होगा इनका? क्या चार घंटे पर्याप्त समय था इनके पास, अपने को सुरक्षित करने का? क्या सरकार राष्ट्रीय विपदा के इस संकटकालीन समय में एक ऑर्डिनेंस पास कर निजी अस्पतालों पर नियंत्रण नहीं कर सकती थी जो कोरोना संक्रमित रोगों के लिए लाखों-लाख वसूल कर रहे हैं? बकौल मृदुला गर्ग–'अब हिंसा का स्वरूप बदल रहा है। अब मारने के लिए हथियारों की जरूरत नहीं रह गई है अब तो भूख ही हिंसा बन गई है। भूख द्वारा लोगों की गरिमा को इतना मार दिया जाएगा कि वे खुद ही मर जाएंगे।'

कोरोना ने जीवन और मृत्यु दोनों में न केवल इनसान को अकेले छोड़ा है, वरन इस मानवीय रिश्ते को भी तार-तार कर दिया है।

भारतीय संस्कृति मौत को भी गरिमायुक्त ढंग से अनंत की यात्रा में विलीन करती है। पुत्र और परिजन शव-यात्रा में कंधा देते हुए अंतिम विदा देते हैं। कोरोना ने जीवन और मृत्यु दोनों में न केवल इनसान को अकेले छोड़ा है, वरन इस मानवीय रिश्ते को भी तार-तार कर दिया है। शव यात्रा और सामूहिक शोक पर तो पूर्ण विराम लग ही चुका है। हैदराबाद के एक परिवार को जब बताया गया कि उनके परिजन की कोरोना से मौत हो चुकी है और जब परिवार ने अंतिम संस्कार के लिए देह की मांग की, तो अस्पतालवाले टाल-मटोल करते रहे, आखिर परिवार ने वीडियो जारी कर गुहार लगाई, तो उन्हें बताया गया कि उनके परिजन को किसी और परिवार द्वारा दफना दिया गया है। कई ऐसे मामले भी सामने आए जहां देह तो मिली, पर वह उनके परिजन की नहीं किसी और की थी। इस प्रकार की घटनाएं नए सिरे से न सिर्फ मनुष्य की गरिमा का मजाक उड़ा रही हैं, न सिर्फ हर संबंध को तार-तार कर रही हैं, वरन हमारी संवेदनाओं पर भी कील ठोक रही हैं।

जीवन की चरम परिस्थितियां या तो हमारा 'स्व' छीन हमें आत्मविहीन बना देती हैं या फिर हमें विश्व चेतना से जोड़ देती हैं। महामारियां पहले भी आई हैं। उन्नीसवीं सदी के प्लेग ने करोड़ों की जान ली, लेकिन उसी महामारी में ढेरों ऐसे योद्धा भी सामने आए जिन्होंने जान की आहुति देकर भी मानवता को बचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। याद कीजिए सावित्री बाई फुले को। परिवार के खेत में एक चिकित्सा सेवा केंद्र खोला और प्लेग के मरीजों को ला-लाकर सेवा-सत्कार करने लगीं। 'मुदवा' गांव के महारों की एक बस्ती के पास पांडुरंग बाबा गायकवाड़ का बेटा प्लेग से आक्रांत था। यह जानते हुए भी कि प्लेग संक्रामक और जानलेवा है, बच्चे को पीठ पर लादकर वे ले आईं। उस समय उनकी उम्र पैंसठ वर्ष थी। बच्चा तो बच गया, पर सावित्रीबाई को अपनी जीवन की आहुति देनी पड़ी।

इस कोरोना काल में भी ढेरों ऐसे डॉक्टर और सामाजिक कार्यकर्ता सामने आए जिन्होंने अपनी जान पर खेलकर लोगों को बचाया। कई संस्थाओं ने, व्यक्तियों ने मुफ्त में मास्क बनाकर बांटे। लोगों के घरों तक अन्न पहुंचाया। मनुष्य और मनुष्य भाव दोनों की ही रक्षा की।

कहने का लब्बोलुआब यह कि तस्वीर के दोनों पक्ष हैं। कोरोना आया है, तो चला भी जाएगा, पर सवाल यह है कि क्या रिश्ते वैसे ही रह पाएंगे? इस बीच जो हुआ है–संवेदनाओं का क्षरण, सामुदायिक जीवन से दूरी, मूल्यों का ह्रास, मरती हुई इस सभ्यता ने जो दुर्गंध छोड़ी है, क्या इससे जीवन मुक्त हो पाएगा? क्या संबंधों में आई ये दूरियां, यह ठंडापन, यह 'बी अलर्ट' वाला आशंकापूर्ण नजरिया, यह आत्मकेंद्रीयता क्या हमारे स्थायी भाव बनकर नहीं रह जाएंगे? क्या कोरोना ने अभी तक के अर्जित हमारे उन समस्त मानवीय मूल्यों को हमसे नहीं छीन लिया जिन्हें सभ्यता की इस सुदीर्घ यात्रा में हमने अर्जित किया था?

पर क्या कोरोना से पहले सबकुछ ठीक था? क्या सभी मानवीय रिश्ते सही-सलामत थे? क्या रिश्तों की चांदनी छिटकी हुई थी?

जी नहीं, हमारे मूल्यों और मानवीय रिश्तों पर तो बहुत पहले ही उदारीकरण और भूमंडलीकरण से उपजे बाजारवाद के खूनी पंजे गड़ चुके थे, जिन्होंने पूरे समाज को बाजार, रिश्तों को व्यवसाय और इनसान को ग्राहक में तब्दील कर दिया था। जिसने विज्ञापन द्वारा मनुष्य के अवचेतन पर कब्जा कर उसे यह सिखाया कि अच्छा

पति वह नहीं है जो आपके प्रति समर्पित है, अच्छा पति वह है जो आपके लिए हीरे का हार खरीदता है, और जैसे हीरा अमर-अजर होता है, वैसे ही हीरे उपहार में देनेवाले पति का प्रेम भी अमर होता है। बाजार ने सिखाया कि अच्छी मां वह नहीं होती जो बच्चे के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए उसे पौष्टिक खाना बनाकर खिलाती है, बल्कि अच्छी मां वह होती है जो अपने राजा बेटे को मैगी बनाकर खिलाती है, तो रिश्तों की जमीन को तो बाजार पहले ही इतना संकीर्ण कर चुका था कि पांव फैलाकर बैठ ही नहीं पा रहे थे रिश्ते। कोरोना ने तो केवल यह किया है कि उसे एक धक्का और दिया है। 10 अप्रैल को अमेरिका के चिंतक नाम चोमस्की ने कहा था– 'कोरोना इज दि रिजल्ट ऑफ न्यू लिब्रल पॉलिसी।'

अंधेरा फैलाया है कोरोना ने, तो कहीं उजाले के कण भी बिखेरे हैं। हमारी दैनिक जिंदगी किस प्रकार हमारे घरेलू सहायकों के बल पर सजी-संवरी हुई थी, कोरोना ने आंख में उंगली डाल दिखा दिया। कई जगह कोरोना ने, मध्य वर्ग के भीतर पारिवारिकता को बढ़ाया। जहां घर का सारा भार अभी तक अकेली स्त्री पर था, कोरोना ने घरेलू सहायक की सुदीर्घ अनुपस्थिति में पति-परमेश्वर को भी चौके में घुसा दिया। पत्नी के साथ घर में पोंछा लगवा दिया, सब्जी कटवा दी। बिस्तर की चादर बदलवा दी। पैदल चलते प्रवासी मजदूरों में कई पतियों ने, कई पुत्रों ने अपनी दुर्बल पत्नी और मांओं को अपने कंधे पर ढोया था। कई चौकों को कोरोना ने पिज्जा-वर्गर से दालचीनी, काली मिर्च, हल्दी-सौंठ और लौंग के मसालों की दुनिया में पहुंचा दिया। कई महत्त्वपूर्ण संदेश कोरोना ने दिए हैं हमें। सबसे बड़ा तो यही कि मुक्ति अकेले की संभव नहीं है। यदि हवा में ही संक्रमण है, तो कितने भी महाबली क्यों न हों, आप बच नहीं सकते।

कोरोना ने कहीं अंधेरा फैलाया है, तो कहीं उजाले के कण भी बिखेरे हैं। कई जगह कोरोना ने, मध्य वर्ग के भीतर पारिवारिकता को बढ़ाया है।

यदि हम चाहते हैं कि धरती पर मनुष्य बचा रहे, तो जरूरी है कि अनियंत्रित उपभोक्तावाद पर काबू पाया जाए। हम प्रकृति को प्रेम करना सीखें। कोरोना के इस भयावह समय में जब सब कुछ दांव पर लगा है, तब इकलौती प्रकृति ही है जो लहलहा उठी है। गंगा इठलाने लगी है। ओजोन की पर्त का छेद भरने लगा है। अब घरों के बाहर पेड़ों पर इतनी सुंदर-सुंदर रंग-बिरंगी चिड़ियाएं दिखने लगीं, जो पहले के प्रदूषित वातावरण में जाने कहां छिपी थीं?

सबसे बड़ा सवाल कोरोना ने यह छोड़ा है कि आज शहरों ने जिन लाखों मजदूरों को अनाथ बनाकर गिरते-पड़ते, रोते-बिसूरते वापस अपने गांव लौटने को मजबूर किया, जहां से कभी वे भूखे निकले थे। क्या गांव उन्हें दाना-पानी दे पाएगा? समय बीतने पर क्या वे वापस उन्हीं शहरों की ओर नहीं लौटेंगे? पर क्या वे, वे ही रह जाएंगे? कितना कुछ इस बीच इनके भीतर टूट चुका होगा। सवाल यह है कि रोजगारों और उद्योगों का इस कदर केंद्रीकरण क्यों हुआ? भूमंडलीकरण और उदारीकरण के बाद जिस कदर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ टूटी, घरेलू और कुटीर उद्योग-धंधे, छोटे और मध्यम दर्जे के उद्योग-धंधे जिस प्रकार दैत्याकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जबड़े में फंसकर दम तोड़ गए, किसानी जिस प्रकार घाटे का सौदा बन गई, उसी का परिणाम था शहरों की तरफ बढ़ता यह भीमकाय पलायन। यह बढ़ती बेरोजगारी।

बहरहाल, समय और सभ्यता के इस मोड़ पर जब धरती पर इनसान का अस्तित्व ही खतरे में हो, सवाल यह है जब अधिकांश दांव पर लगा हो, तो थोड़ा-बहुत जो बचा है उसे कैसे बचाया जाय? बचाया जा सकता है यदि मनुष्य रूप में हम अपने को बचा सके। क्यों कहा गया था, 'सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम', क्योंकि पूरी सृष्टि में मनुष्य ही इकलौता ऐसा प्राणी है जिसमें विवेक है, सत्य है, शिव है। आज इस मानवीय आपदा का तकाजा है कि जो ऊर्जा, जो समस्त शक्तियां हम प्रकृति विरोधी विकास को आगे बढ़ने में लगा रहे हैं, उस पर विराम दे हम वापस प्रकृति की ओर लौटें। मनुष्य बनने की ओर लौटें।

(लेखिका सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं)

नए अवसर नई चुनौती

कोई भी आपदा सिर्फ संकट लेकर ही नहीं आती, अवसर लेकर भी आती है। यह हम पर है कि हम उसका उपयोग कैसे और कितना कर पाते हैं? इन अवसरों के रास्ते में चुनौतियों की कमी नहीं होती, लेकिन इससे पार पाकर ही एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण होता है

अनामिका

कश्मीरी शैव दर्शन में काल की परिकल्पना एक भोजन-भट्ट के रूप में हुई है। 'काल के गाल' में समानेवाला मुहावरा कहीं-न-कहीं उसके प्रलयंकर भाव से जुड़ता नजर आता है। कोविद-काल में यह बात मेरे मन में लगातार ही दस्तक देती रही कि भोजनभट्ट वाला बिंब युद्ध, महामारी और दूसरी प्राकृतिक आपदाओं के समय और सार्थक हो जाता है जब उसी क्षिप्रता से काल हमें फांकता चला जाता है जिससे भूखा व्यक्ति चबेना फांके और भोजनभट्ट भोजन के बाद की रेवड़ियां।

इसका दूसरा पक्ष जो कोरोना-जैसी आपदाएं उजागर करती हैं, उसे कबीर की इस साखी से जोड़कर देखा जा सकता है–

झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद,
खलक चबैना काल का, कुछ मुंह में कुछ गोद।

वैसे तो हम झूठे सुख को सुख न कहें, तो भी यह अलख ब्रह्मांड काल का चबैना ही रहेगा, मृत्यु से मुक्ति नहीं–न ज्ञानी की, न अज्ञानी की, पर इस तरह की धाराप्रवाह मृत्यु के प्रसंग अक्सर तभी घटते हैं जब प्रकृति का सहज छंद तोड़ने की हमने कोशिश की हो अतीत में। युद्ध, आतंक, हिंसा, पर्यावरण-दोहन, लूट-खसोट, भौतिकता की अंधी दौड़ हममें जो खास तरह का आवेग भरती है, उसके प्रत्युत्तर में प्रकृति का भी सौम्य भाव टूटता है और रौद्र भाव जग जाता है। ये ही वे 'झूठे सुख' हैं जिनकी

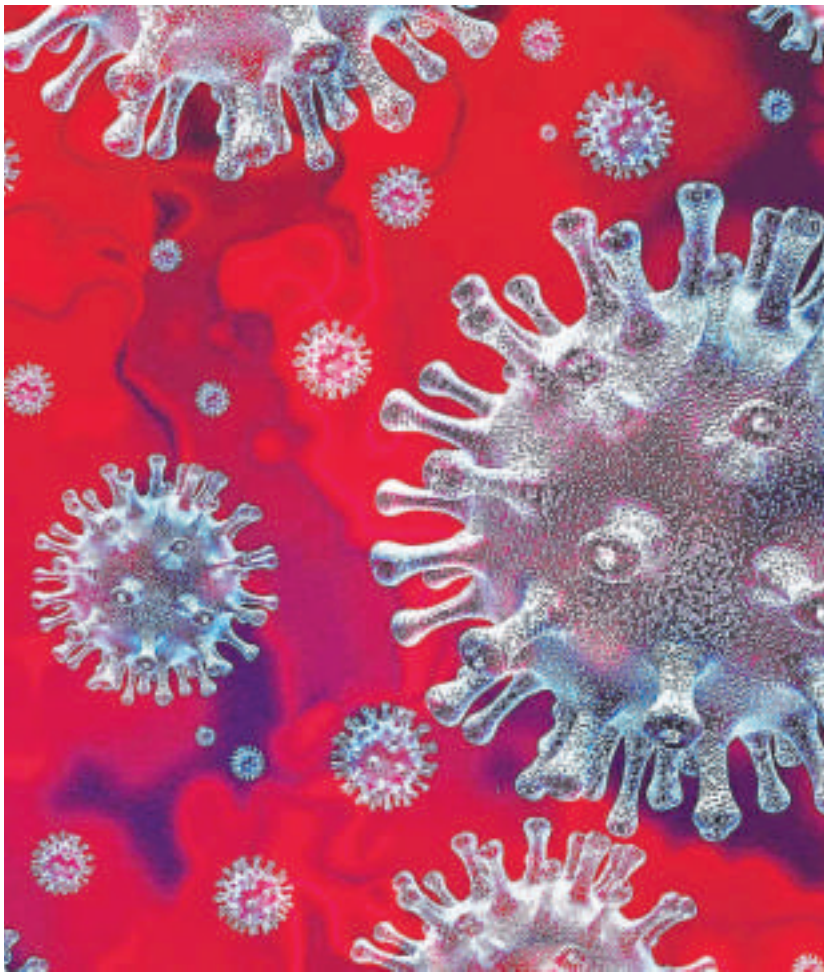

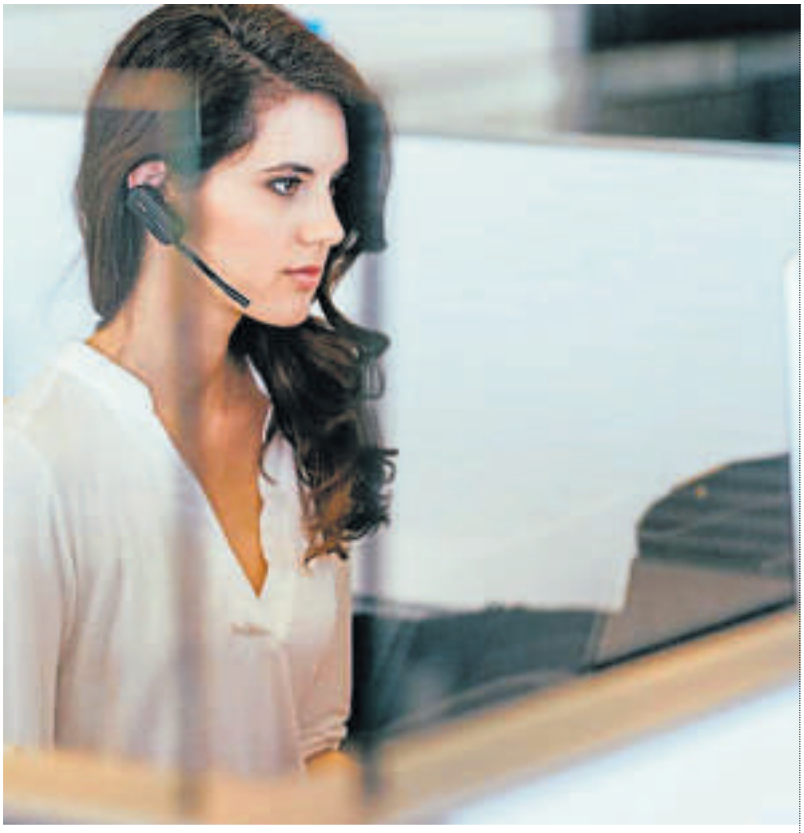

जिंदगीभर घर से काम

अधिकतर की तो नहीं कह सकते, लेकिन बहुत-से लोगों की यह इच्छा होती है कि वह घर बैठे ही ऑफिस का काम करें। ऐसे लोगों की खासतौर पर जो सिंगल पेरेंटिंग होते हैं। या फिर ऐसे सिंगल लोग, जो दिनभर ऑफिस में इस चिंता में घुले रहते हैं कि घर पर उनके अकेले बुजुर्ग माता-पिता न जाने किस हाल में होंगे। हर किसी की अपनी-अपनी चिंताएं हैं।

ऐसी ही एक चिंता है—कोरोना। पूरी दुनिया इससे पीड़ित है। इस महामारी ने पूरी दुनिया को जैसे एक कैदखाने में तब्दील कर दिया है। पूरी दुनिया एक अनचाहे लॉकडाउन की जिंदगी जी रही है। इस लॉकडाउन का असर कामकाज पर भी पड़ा है। बहुत से ऑफिस बंद हो चुके हैं। बहुतों में घर से ही काम किया जा रहा है। ऐसा कब तक चलेगा कोई नहीं जानता।

ऐसे बुरे समय में उन लोगों के लिए एक अच्छी खबर है, जो घर से ही ऑफिस का काम करने की इच्छा रखते हैं। पिछले दिनों सोशल नेटवर्किंग साइट 'ट्विटर' ने ऐलान किया है कि वह अपने कुछ कर्मचारियों को जिंदगीभर घर से काम करने की अनुमति देगा। यह सुविधा उन लोगों के लिए है, जो घर से काम करने के इच्छुक हैं। ट्विटर के सीईओ जैक डोर्सी ने कहा है कि उनके कर्मचारी जब तक चाहें घर से काम कर सकते हैं।

ओर कबीर का इशारा है—इन्हीं के लगाए हुए निन्यानवे के फेरे जीवन को असमय ही काल का ग्रास बना देते हैं।

इस बात की गहरी समझ जिनमें भी विकसित हो जाती है, वे कभी ऐसी अफरा-तफरी नहीं मचाते जैसी कोरोना-काल में भी हमने मचा रखी है—'अंताक्षरी' भाव में वेबिनार और 'फेसबुक-लाइव' खेलते हुए—

'बैठे-बैठे क्या करें, करना है कुछ काम
शुरू करो अंताक्षरी, लेकर हरि का नाम।'

इसी भाव में हम आकाशी कबड्डी खेलते चले जा रहे हैं। कोई रुककर सोच नहीं रहा कि जीवन की रफ्तार हमें कम करनी है—एक-एक कदम फूंककर चलना है, कुछ बोलने से पहले सोचना है थोड़ा, कि बोलना जरूरी है क्या! बहुत ज्यादा बाहर भाग चुके, अब थोड़ा भीतर भी लौटना है। एक 'ब्रीदिंग स्पेस' देना है खुद को, प्रकृति को और पूरी धरती को, जिसे आधुनिक भाषा में लोग 'माइंडस्पेस', स्पेस कहने लगे हैं। दो अणुओं के बीच भी अंतर आण्विक स्पेस होता है। शब्दों के बीच और लोगों के बीच भी एक ऐसा उन्मुक्त आकाश होना ही चाहिए। कितनी खचखच हम झेलेंगे! अभी तो चमगादड़ों का डीएनए बदला, उनका म्युटेशन हुआ, तो ऐसा कहर टूटा। यह सिलसिला बना रहा, तो प्रलयंकर स्थिति घिर जाएगी।

'घर'-जैसा पुराना शब्द भी अपने नए आयाम में उद्घाटित हो रहा है! मजदूर कबीर की तरह से सधुआए नहीं कि 'मरनो भलो बिदेस में' का मर्म समझ पाएं। उन्हें लगता है कि भूख से बिलबिलाकर सड़क पर मरने से अच्छा है, अपनी मिट्टी में, अपने लोगों के बीच दम तोड़ें। जिसे शिक्षा की सुविधा मिली हो, वह तो पढ़-लिखकर भी दिन काट लेगा, पर जिन्हें यह सुविधा नहीं मिली और काम भी नहीं मिला, उन्हें घर से बाहर 'पड़े रहना' अखरेगा ही।

एक तबका ऐसा है जो घर जाने को तरस रहा है और दूसरा ऐसा कि उसे फिर 'वर्क फ्रॉम होम' के प्रेशर में दूनी-चौगुनी रफ्तार से और ज्यादा काम करना पड़ रहा है। और अब तो ऐसा लगता है कि शायद यह स्थिति बनी ही रहेगी और घर के 'केंद्र' पर प्रकार रखकर एक बड़ा वृत्त खींचना होगा।

युवकों के मुंह से सुनती रहती हूं कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इन नई चुनौतियों से उबरने के क्या उपाय सोचे जा रहे हैं। वे तरह-तरह के सर्वेक्षणों, अनुसंधानों और 'आर्टिफिशियल इंटेजिलेंस' से संबद्ध प्रयोगों के आशय मुझे समझाते रहते हैं कि कॉरपोरेट की दुनिया में भी लोग मानवीय मूल्यों के अधिकाधिक प्रसार के नए रास्ते ढूंढ़ने में लगे हैं। पूर्वापर अनुभवों से यह बात साफ हो चुकी है कि घुड़दौड़ का घोड़ा बने रहने का कोई मतलब नहीं:

'इवेन वेन यू विन द रैट रेस, यू रीमेन अ रैट।' चूहा-दौड़ जीतकर भी आप चूहे ही बने रहेंगे, मानवीय गरिमा से अछूते। पशु-पक्षियों के सरल जीवन में एक भोलापन तो है, आपमें वह भी नहीं, और जिसके जो दुर्गुण हैं, उसकी ओर आप बांहें पसारे खड़े हैं। अपने नए नायकों के नाम भी आपने अजीब-से रखे हैं—'बैटमैन,' 'स्पाइडर मैन'। जीवों से प्यार करना चाहिए, जीव-मात्र में कुछ-न-कुछ सीखने लायक होता है, पर उसके त्याज्य गुणों से तादात्म्य का कोई मतलब नहीं।

'नेटवर्क कैपिटल'-जैसी पियर-मेंटरिंग संस्थाएं गिरहकट स्पर्द्धा से पीड़ित संसार में हंसमुख सहकारिता का विराट् दर्शन लेकर हजारों अनूठे काम इंटरनेट शासित स्पेस में ही कर रही हैं जो कोरोना-काल में सर्वाधिक कारगर स्पेस के रूप में उभरा है। दुनिया के 104 विकसित, अर्द्धविकसित, अविकसित देशों के तेजस्वी युवकों का एक संयुक्त परिवार है यह। हिंदुस्तान-पाकिस्तान, इसराएल-फिलिस्तीन-जैसे कठिन पड़ोसों से उभरे तेजस्वी टेक्नोक्रेट, प्रबंधक, अकादमिक, उद्यमी, वैज्ञानिक, कलाकार, दार्शनिक भी यहां एक मंच पर इकट्ठा हैं। इस भाव से इकट्ठा हैं कि अंतर्निहित संभावनाएं विकसित करने में कैसे एक-दूसरे की मदद करें। पहले एक टीम लंबी बातचीत के बाद यह तय करती है कि किसकी गति किस क्षेत्र में है और उसकी बाधाएं क्या हैं—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, शैक्षिक बाधाएं और उसके बाद विश्वसनीय दोस्त उसके गुणों के समुचित संवर्द्धन और बाधाओं के क्रमिक निवारण की कोशिश सफलतापूर्वक कर देते हैं, फिर यह एक सूफियाना सिलसिला बन जाता है—दीप से दीप जलाते चलने का। इस तरह यह सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदान का भी एक महत्त्वपूर्ण मंच बन जाता है। एक लाख से ज्यादा युवक कोरोना-काल में भी इस पर सजग शांति-सेनानियों के भाव से जुटे हैं।

एक लाख से ज्यादा युवक कोरोना-काल में सेनानी भाव से जुटे हैं। हर चुनौती एक अवसर है। आत्मसंबल का सबसे कारगर उपाय है परेशान लोगों के संबल में जुट जाना!

भविष्य में इस तरह की और संस्थाएं विकसित होंगी, ऐसी उम्मीद है। हर चुनौती एक अवसर है और आत्मसंबल का सबसे कारगर उपाय है परेशानहाल लोगों के संबल में जुट जाना! अगर हमारे तेजस्वी युवकों के सार्थक जीवन के ये दो आधारभूत प्रमेय आत्मसात कर लिए और 'गिरहकट स्पर्द्धा' का प्रत्याख्यान 'हंसमुख सहकारिता' बन पाई, तो कोरोना की चुनौतियां भी हम शालीनतापूर्वक झेल जाएंगे और इस नई जीवन-दृष्टि के विकास में इंटरनेट शासित स्पेस की भूमिका निश्चय ही वरेण्य होगी। इंटरनेट को नए जमाने का चौराहा कह सकते हैं—नए जमाने का ढाबा/कॉफी हाउस/पान की दुकान जहां तरह-तरह की बहसें लगातार गुलजार रहती हैं, पर भविष्य से यह उम्मीद है कि उस चौराहे का स्थानापन्न हितकारिणी आलोचना बने। चौराहे में घर की अंगनैया की भी खुशबू रहे।

(लेखिका सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं)

...जरा संभलकर बदलना होगा

कोरोना-जैसे संकट किसी भी देश के लिए भयानक त्रासदी का कारण बनते हैं। यही संकट वहां की सरकारों को असीमित अधिकार भी दे देते हैं। इस आपदा के बाद दुनिया के सामने बड़ी चुनौती नागरिक अधिकारों से लेकर लोकतांत्रिक व्यवस्था को बचाए रखने की होगी। सार्वजनिक व्यवस्थाओं को और मजबूती देने की होगी। यह तभी होगा, जब हम संभलकर बदलेंगे

राजेंद्र धोड़पकर

हमारे इलाके में एक निजी अस्पताल है। लॉकडाउन के दौर में हमें किसी दवा की जरूरत थी, इसलिए हम उस अस्पताल में मौजूद दवा की दुकान तक गए थे। शाम का वक्त था, सारा इलाका सुनसान, सांय-सांय कर रहा था। जब हम उस अस्पताल के अहाते में पहुंचे, तो हमने देखा कि सिर्फ दवा की दुकान में कुछ चहल-पहल थी, बाकी सारा अस्पताल खाली था, सिर्फ हल्की-सी रोशनी गलियारे में थी और एकाध कर्मचारी शायद वहां रहा होगा।

यह वक्त वह था जब देश में हमारे दौर की सबसे बड़ी महामारी तेजी से पैर पसार रही थी। सामान्य समझ यह कहती है कि जब कोई बीमारी ज्यादा फैल रही हो, तो अस्पताल और डॉक्टरों, स्वास्थ्यकर्मियों को ज्यादा व्यस्त रहना चाहिए, लेकिन यहां यह अस्पताल सुनसान पड़ा था।

यही हाल देश के ज्यादातर निजी अस्पतालों का था। बड़े-बडे अस्पताल कह

रहे थे कि उनके यहां काम ठप था, कई अस्पताल मालिक सरकार से राहत पैकेज की मांग कर रहे थे। यह वही वक्त था जब मरीज दर-दर की ठोकरें खाते हुए एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल भटक रहे थे और सरकारी अस्पतालों की जीर्ण-शीर्ण व्यवस्था दम तोड़ रही थी।

कहा जाता है कि भारत की अस्सी प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाएं निजी क्षेत्र में हैं, यानी हम यह मान सकते हैं कि महामारी के दौर में देश के कुछ नहीं तो कम-से-कम सत्तर प्रतिशत डॉक्टर और स्वास्थ्य सुविधाएं कुछ काम नहीं आ रही थीं, तो ऐसी स्वास्थ्य सुविधाओं का क्या मतलब है जो वक्त पर काम नहीं आएं?

कोरोना महामारी का एक सबक यह है कि वे देश इस बीमारी से निपटने में ज्यादा कामयाब हुए हैं, जिनकी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं बहुत चुस्त-दुरुस्त हैं। यह बात अमीर देशों के बारे में भी सच है और गरीब देशों के मामले में तो बहुत ही जरूरी है। अपने देश में भी वे राज्य बेहतर रहे जिनकी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं बेहतर हैं, कई अमीर राज्य भी इसलिए लड़खड़ाते नजर आए जहां सरकारी सुविधाएं ठीक नहीं हैं।

ऐसा नहीं है कि यह महामारी चली गई है और अब महामारियां नहीं आएंगी। इतिहास बताता है कि महामारियों का संबंध मौसमों में बड़े बदलावों से रहा है। चूंकि अब ग्लोबल वार्मिंग के दौर में जलवायु परिवर्तन की गति तेज हो रही है, इसलिए हो सकता है कि महामारियां भी बार-बार आएं। वैश्वीकरण के इस दौर में महामारियों के भी तेजी से ग्लोबल हो जाने का खतरा बना हुआ है। इस सदी में कुल बीस साल गुजरे हैं और अब तक हम पांच-सात महामारियों का आतंक तो देख ही चुके हैं।

यह बहुत साफ हो गया है कि महामारियों से निपटने में निजी स्वास्थ्य तंत्र कोई काम नहीं आता। वह तो तभी काम करता है जब मरीज उसके पास जाता है और पैसा दे चुकता है। महामारी में हम मरीज के अस्पताल पहुंचने का इंतजार नहीं कर सकते, न ही यह उम्मीद कर सकते हैं कि महामारी उसी नागरिक को पकड़ेगी जिसके पास पैसा खर्च करने का सामर्थ्य है। न ही हम यह मान सकते हैं कि किसी महामारी को खत्म करने के लिए टीका लगाने का व्यापक अभियान निजी क्षेत्र कर सकता है। बीमारी के इलाज से पहले की स्थिति उसके रोकथाम के उपायों की होती है, ताकि वह फैल न पाए। यह काम भी निजी क्षेत्र के वश का नहीं है।

ग्लोबल वार्मिंग के असर से सिर्फ बीमारियों का खतरा नहीं है, तमाम प्राकृतिक आपदाएं भी बढ़ सकती हैं। पिछले दिनों जो टिड्डियों का आक्रमण हुआ था, उसका रिश्ता भी जलवायु परिवर्तन से जुड़ता है। इस साल वसंत में ऐसी बारिश हुई-जैसी बरसात के मौसम में नहीं होती, इससे रेगिस्तानी इलाकों में नमी पैदा हो गई जो टिड्डियों के अंडे देने के लिए मुफीद माहौल बनाती है, इसलिए हमें सचेत रहना होगा कि आइंदा भी ऐसा हो सकता है।

इसी कोरोना के दौर में मुसीबत बढ़ाने के लिए दो-दो चक्रवाती तूफान भी आ गए। बंगाल की खाड़ी में आए 'अंफन' ने काफी तबाही मचाई, लेकिन बंगाल की खाड़ी में ऐसे चक्रवात आते रहते हैं। पश्चिमी तट पर आया 'निसर्ग' उतना खतरनाक नहीं था, लेकिन वह इस मायने में ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि ज्ञात इतिहास में पहली बार भारत के पश्चिमी तट पर चक्रवात आया है। इसका अर्थ यह है कि अब यहां भी चक्रवात आ सकते हैं। इससे निपटने के लिए तैयारी जरूरी है, हालांकि ऐसी तैयारी की उम्मीद कम ही दिखती है।

कोरोना महामारी का एक सबक यह है कि वे देश इस बीमारी से निपटने में ज्यादा कामयाब हुए हैं, जिनकी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं बहुत चुस्त-दुरुस्त हैं।

ये सारे संकेत हैं कि आनेवाले वक्त में वे ही समाज चुनौतियों को झेल सकेंगे जिनके यहां सार्वजनिक व्यवस्थाएं मजबूत होंगी, क्योंकि चुनौतियां ऐसी होंगी जिनमें निजी तंत्र का कोई खास उपयोग नहीं होगा। देखना

यह होगा कि क्या आनेवाले वक्त में समाज और सरकारें कुछ अलग तरीके से सोचने के लिए तैयार होंगी।

पिछला लंबा दौर समाजवादी व्यवस्थाओं और विचार के पराजय का दौर रहा है। सोवियत साम्राज्य के पतन ने जैसे यह मोहर लगा दी कि समाजवादी व्यवस्था हमारे दौर में अप्रासंगिक है। अनेक तरह से यह दौर पूंजीवादी व्यवस्था के दिग्विजय का दौर रहा है, जिसमें यह मान लिया गया कि खुले बाजार की व्यवस्था में हर समस्या का हल है। जिस समाज में सरकार की जरूरत कम-से-कम हो वही समाज तेजी से तरक्की करता है।

यह भी सही है कि यह दौर अभूतपूर्व समृद्धि का दौर रहा है। जितनी तेजी से जितने ज्यादा लोग इस बीच गरीबी से उबरे हैं, वैसा उदाहरण इतिहास में शायद ही कोई हो, लेकिन इस दौर ने समस्याएं भी उतनी ही तेजी से खड़ी कीं। आर्थिक असमानता बहुत गहरी हुई और इससे असंतोष भी फैला। पिछले कुछ वर्षों में दुनिया के तमाम देशों में जो आंदोलन देखने में आ रहे हैं, उनकी जड़ में अर्थशास्त्रियों को आर्थिक असमानता नजर आ रही है। दूसरे, पर्यावरण का जिस कदर नुकसान हुआ है उसकी वजह से ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रही है, लेकिन विकास के इस मॉडल में उस किफायत की कोई जगह नहीं है जिससे ग्लोबल वार्मिंग से होनेवाले नुकसान को घटाया जा सके। अब ग्लोबल वार्मिंग के दुष्परिणाम भी दिखने लगे हैं। समस्या यह है कि हम वैसे तो सरकार को निकम्मेपन और बदइंतजामी का प्रतीक मानते हैं और निजीकरण की वकालत करते हैं, लेकिन ग्लोबल वार्मिंग के नतीजों से निपटने की जिम्मेदारी सरकारी तंत्र पर ही डालते हैं। चाहे बाढ़ हो या महामारी, इनसे निपटने का काम तो सरकार को ही करना है और जहां सरकारी तंत्र बेहतर है वहां यह काम बेहतर ढंग से होता है। क्या आनेवाले वक्त में यह समझ बदलेगी और हम सार्वजनिक व्यवस्था को और बेहतर बनाने की कोशिश करेंगे।

आदर्श स्थिति यह होगी कि आनेवाले वक्त में सार्वजनिक व्यवस्थाएं बेहतर हों, क्योंकि वे ही आनेवाले वक्त की चुनौतियों का सामना कर पाएंगी, लेकिन इस महामारी के दौर में ही जो चिह्न दिख रहे हैं वे कुछ खतरनाक परिस्थितियों की ओर इशारा भी कर रहे हैं। जैसा कि आज से पंद्रह-बीस साल पहले माना जा रहा था कि दुनिया की व्यवस्थाएं ज्यादा लोकतांत्रिक हुई जा रही हैं और वे इसी गति से इसी दिशा में बढ़ती चली जाएंगी। वह दौर असाधारण आर्थिक तरक्की का दौर था और तब ऐसा नहीं लगता था कि यह रफ्तार भी कम होगी, लेकिन सन् 2009 के झटके के बाद आर्थिक तरक्की की रफ्तार रुकी और लोगों के निर्बाध आशावाद को झटका लगा। इसके बाद जो मोहभंग का दौर शुरू हुआ उसमें तमाम देशों में अनुदार, संकीर्ण राष्ट्रवादी, सांप्रदायिक या नस्लवादी ताकतें मजबूत होने लगीं। आम जनता का गुस्सा ऐसे में अक्सर बाहरी, प्रवासी, दूसरी नस्ल या धर्म के लोगों की ओर मुड़ जाता है, क्योंकि वे परिस्थिति की जटिलता को समझ नहीं पाते और उन्हें कोई आसान दुश्मन और उससे निपटने का आसान तरीका चाहिए होता है। एकाधिकारवादी नेता या संगठन यह काम बखूबी कर देते हैं।

ऐसी परिस्थिति में जो यह लग रहा था कि दुनिया ज्यादा उदारता की ओर जा रही है, वह प्रक्रिया रुक गई। तमाम देशों में अनुदार शासक और संगठन सत्ता में आ गए। ज्यादा खतरनाक यह था कि पिछली शताब्दी की तरह ये शासक न तो फौजी तख्तापलट से आए थे, न ही वे वर्दी पहनकर राज चला रहे थे।

निरंकुशता का खतरा

दुनिया के तमाम विचारक आनेवाले समय में एक खतरे की ओर इशारा कर रहे हैं। यह खतरा है निरंकुशता का। कोरोना महामारी से लड़ने के नाम पर तमाम शासकों ने और ज्यादा निरंकुश अधिकार अपने नाम कर लिए हैं। अब खतरा यह है कि एक बार ऐसे अधिकार मिल जाने के बाद कोई उन्हें छोड़ता नहीं है, यानी आनेवाले दौर में हम लोकतांत्रिक मूल्यों का और क्षरण देख सकते हैं। जब तरह-तरह के संकट सिर पर मंडराएंगे, तो उसके आसान उपायों के आकर्षण में हो सकता है कि लोग ऐसे लोकलुभावन अधिनायकों के ज्यादा कब्जे में चले जाएं।

इसका अर्थ यह हो सकता है कि हम ऐसे शासक और सरकारें देखें जो अधिकार तो ज्यादा हड़प लें, लेकिन जिम्मेदारी के नाम पर निजी क्षेत्र को ज्यादा तरजीह देने की वकालत करें। यह समाज के कमजोर वर्गों के लिए दोहरी मार-जैसी स्थिति होगी, क्योंकि एक तरफ वे पर्यावरण में बदलाव की वजह से आनेवाले संकटों को ज्यादा झेलेंगे, दूसरी ओर उनके शासक अपनी जिम्मेदारियां टालनेवाले होंगे।

वे बाकायदा चुनाव लड़कर आए थे और उन्होंने बजाय लोकतांत्रिक संस्थाओं को नष्ट करने के उन्हें अपने एकाधिकारवादी शासन के अनुकूल बना दिया। यानी कहने को तो तमाम देशों में लोकतंत्र है, लेकिन वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्य, संस्थाएं और अधिकार कम हुए जा रहे हैं।

आनेवाला वक्त फिजूलखर्ची का नहीं, बल्कि किफायत का हो, क्योंकि हमारी फिजूलखर्ची पर्यावरण संकट के लिए जिम्मेदार है। यह वैसे भी नैतिक रूप से अपराध है, क्योंकि वास्तव में हम जिस संपत्ति को गैरजिम्मेदारी से उड़ा रहे हैं वह हमारी नहीं प्रकृति की संपदा है और उस पर न सिर्फ सारे इनसानों का बराबरी का हक है, बल्कि प्रकृति के सारे जीव भी उसके बराबरी के हिस्सेदार हैं। अब भी हम बर्बादी और कुछ लोगों की समृद्धि के लिए प्रकृति की संपदा को उड़ाते रहे, तो हम और ज्यादा संकटों से घिरेंगे और फिर समृद्ध या ताकतवर लोग भी उनसे बचेंगे नहीं। कोरोना की विपदा ने गरीब-अमीर, किसी को नहीं छोड़ा और जब ग्लोबल वार्मिंग से समुद्र की सतह ऊंची होगी, तो उससे मुंबई के नरीमन पॉइंट-जैसे इलाके भी डूब जाएंगे, जिनमें एक वर्ग इंच जमीन खरीदने की हम-जैसे मध्यमवर्गीय लोगों की औकात नहीं है।

अगर यह सदी किफायत और सादगी की सदी नहीं हुई, उदारता, अहिंसा और बराबरी-जैसे खोए हुए मूल्यों को हमने फिर न अपनाया, तो हम हर संकट को सौ गुना बढ़ा देंगे और ऐसे में आनेवाली पीढ़ियां शायद हमें कृतज्ञता से तो नहीं याद रखेंगी।

(लेखक प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट और पत्रकार हैं)

एच एम वी एल प्रकाशन

बच्चों की मनपसंद नंदन

सब्सक्राइब करना अब
हुआ और आसान

अब पाएं 30% छूट

विदेशों में सदस्यता शुल्क	सब्सक्रिप्शन ऑफर	कोरियर/रजिस्टर पोस्ट द्वारा
एक वर्ष ₹1,250/- में	एक वर्ष : मूल्य ~~₹360/-~~, आपके लिए ₹290/-	एक वर्ष ₹720/- में
दो वर्ष ₹2,420/- में	दो वर्ष : मूल्य ~~₹720/-~~, आपके लिए ₹500/-	दो वर्ष ₹1,365/- में

पुराने ग्राहक अपने सब्सक्रिप्शन की समाप्ति तिथि जानने लिए 'नंदन' के साथ भेजे गए लिफाफे को देखें।

नंदन सब्सक्रिप्शन फॉर्म

श्री / सुश्री :.....
नाम :.....
उपनाम :.....
प्रति भेजने का पता :.....
.....
.....
शहर :.....
पिन :.....
प्रदेश :.....

ई-मेल :.....
टेलीफोन :.....
मोबाइल :.....
चेक / ड्राफ्ट / मनीऑर्डर न :.....
'Hindustan Media Ventures Limited' के नाम से
बैंक का नाम :.....
ब्रांच :.....
तारीख :.....
हस्ताक्षर :.....

दिए गए कूपन को शुल्क के साथ इस पते पर भेजें:

सब्सक्रिप्शन सेल, एच टी मीडिया लिमिटेड,
पैसिफिक बिज़नेस पार्क, फोर्थ फ्लोर (ए-401),
साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया,
जिला - गाजियाबाद (ऊ. प्र.) - 201010

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:
011-6000 4242

पत्रिका न मिलने पर डायल करें: 0120 6678 788 या
ई-मेल करें rakesh.mohanty@hindustantimes.com

एक अलग कल की आहट

मौजूदा हालात ने अपनी दुनिया को कमरों में कैद कर दिया है। चारों तरफ चिंता और डर का माहौल है। अपने में सिमटा रहनेवाला इनसान अपने में और भी सिमट गया है। लेकिन इस माहौल में कुछ ऐसा भी है, जो उम्मीद जगाता है

पं. मधुप मुद्गल

कुछ अर्से से जब मैं कहीं घूमने जाता था, तब कुछ दृश्य देखकर, थोड़ा परेशान होता था। लोग प्राकृतिक दृश्य, पहाड़, नदी, पेड़-पौधों की नैसर्गिकता का आनंद लेने के बजाय सेल्फी लेने में व्यस्त रहते हैं। वह उस जगह को देखने या महसूस करने का अवसर यूं ही गंवा देते हैं। उनके लिए फिर इस तरह घूमने जाने का क्या फायदा? मुझे समझ नहीं आता। सफर हमें एक नया नजरिया देता है। हमारे दिलो-दिमाग को खोलता है। जिंदगी को देखने का अंदाज बदल जाता है। हमारे गुरुजी कुमारजी कहते थे कि हर चीज का आनंद लेना चाहिए। पर आज लॉकडाउन के दौरान हमने बहुत-सी जिंदगियों का सहारा इन मोबाइल और इंटरनेट को बनते देखा।

पिछले तीन-चार महीने से सभी घरों में बंद हैं, हालांकि रियाज तो मेरा नियमित चलता है। मन में बार-बार बीते दिन याद आते हैं। उन दिनों हमलोग कनॉट प्लेस में रहते थे। पिताजी और माताजी बहुत सादगी से रहते थे। बाहर घूमना-फिरना नहीं के बराबर था। हम सालभर हौजखास में होनेवाली पिकनिक का इंतजार करते थे। साल में एक बार विद्यालय के सारे बच्चों को बस से वहां लेकर जाया जाता था। सुबह से सारे दिन खाना-पीना और घूमना-फिरना होता। और शाम को लौट आते। पहले माता-पिता के साथ कभी सिर्फ घूमने के लिए नहीं गया। पैसों की दिक्कत तो थी। उन दिनों होटलों में ठहरना और बाहर खाना अच्छा नहीं माना जाता था। मैं ग्यारहवीं क्लास में था, तब मॉडर्न स्कूल से पंडारा रोड लंच करवाने ले जाया गया था।

कुछ यों होगा नजारा...

लॉकडाउन के बाद का नजारा विदेशों से आने लगा है। न्यूजीलैंड और स्विट्जरलैंड में स्थिति सामान्य होने लगी है। वहां ऑडिटोरियम और सिनेमा हॉल सोशल डिस्टेंसिंग के साथ खुलने लगे हैं। लोग इस महामारी की गंभीरता को समझ रहे हैं। वे जानते हैं कि जब तक इस बीमारी की वैक्सीन नहीं आ जाती, तब तक सावधानी ही इसका इलाज है। एक स्थिति और है, जो बदली-बदली-सी है। हमारी संवेदनाएं अपने पर केंद्रित होती जा रही हैं। हमें अपना कष्ट तो दुखी करता है, लेकिन दूसरे का कष्ट डराता है। यह डर है कि कहीं हमें भी यह रोग न हो जाए। हम उससे दूर-दूर रहते हैं। उससे बचते हैं। डर के मारे फोन भी नहीं करते, कहीं वह कुछ मदद न मांग ले। पहले ऐसा नहीं था, हम उसका हालचाल पूछने उसके घर तक जाते थे। उसके साथ खड़े रहते थे, लेकिन अब? यह अब ही सबसे बड़ा सवाल है। इस दौरान आईं तमाम रिपोर्टें और सर्वे भी यही कहते हैं। लेकिन जिंदगी और इनसानियत इन सर्वों से नहीं चलती। वह इनसे कहीं ऊपर है। और यही सच भी है। एक सच यह भी है कि हमें सामान्य जीवन जीने में वक्त लगेगा।

उस दौरान मैंने पहली बार दाल मक्खनी का नाम सुना था। मैं रेस्तरां में चुपचाप बैठा रहा, कुछ भी ऑर्डर नहीं कर पाया था।

अब एक सवाल हमेशा मन में घूमता रहता है कि आगे क्या होगा? अनिश्चितता की स्थिति है, और सब कुछ भगवान के हाथ में है। जब कभी बॉलकनी से चारों तरफ नजर डालता हूं, तो चारों तरफ उदासी और मायूसी नजर आती है। न्यूज चैनलों की खबरें और भी मायूस करती हैं। मैं सोचता हूं कि देशभर से मजदूरों का पलायन हुआ है। यह दुखद है। दुनिया में सभी देशों में असमानता है—अमीर और गरीब की खाई तो और बढ़ेगी। रूस-जैसे देश में समानता की बात की जाती है। वहां की स्थिति भी बहुत बेहतर नहीं है। लॉकडाउन के बाद, देश-विदेश में लोगों के बीच आर्थिक असमानता बढ़ेगी। इसमें किसी का वश नहीं है।

आनेवाली पीढ़ी कुछ दशकों तक इस दहशत के साथ जीने को मजबूर होगी। उसकी यादों में सहजता के बजाय एक अनिश्चितता रहेगी। हम भी भविष्य की योजनाओं को बनाने में अब हिचकने लगे हैं। हमारी याददाश्त हमारी चेतनता ही तो है। मेरी चेतना में कुमारजी समाए हुए हैं। पिताजी के साथ-साथ कुमारजी को शायद ऐसा कोई दिन नहीं होता होगा, जो मैं याद न करता हूं। पिताजी ने विष्णु दिगंबर जयंती की शुरुआत की थी। उसी समारोह के दौरान सन् 1967 में पहली बार कुमारजी का निर्गुण भजन सुना। उनकी गायकी ने मुझे भीतर तक छू लिया। उनके स्वर मेरे जेहन में समा गए और मेरी सोच की दिशा को बदल दिया। उनके प्रति मेरे मन में अगाध प्रेम और कृतज्ञता का भाव रहता है। इन दिनों तो पुरानी यादें ही जीने का सहारा बनी हुई हैं।

मुझे याद आती है, पिता व गुरु की कही बात कि तुम विद्यालय परिसर में जो चाहे वो करो, लेकिन जब तक तुम यहां हो तुम्हें मेरी बात माननी होगी। तुम्हें संगीत सीखना और सिखाना होगा। आज कई बरस हो गए, उनको इस दुनिया से गए हुए, पर मेरे जेहन में उनकी बातें वैसे ही रची-बसी हैं। उन्हीं को स्मरण करता हूं और उनका पालन करता हूं। आजकल नियमित तौर पर अपने परिवार के साथ प्रार्थना—'जय जगदीश हरे' गाता हूं। हम सब साथ मिलकर भजन और गीत गाते हैं। इस लॉकडाउन के दौरान मैंने निर्गुण शबद—'अनहत सबद बजंत' और रसिया की धुन पर एक तराने का अभ्यास किया। वाकई, 'यादें' ईश्वर की बहुत बड़ी नियामत हैं। उन्हीं के दम पर यह दुनिया चल रही है और आगे भी चलती रहेगी।

> आनेवाली पीढ़ी कुछ दशकों तक इस दहशत के साथ जीने को मजबूर होगी। उसकी यादों में सहजता के बजाय एक अनिश्चितता रहेगी। हम भी भविष्य की योजनाओं को बनाने में अब हिचकने लगे हैं।

दरअसल, आशा और विश्वास से ही दुनिया चलती है, पर कलाकारों की दुनिया कला से ही है। स्थापित कलाकारों का गुजारा तो हो जाएगा। जागरण-जगराते, ऑरकेस्ट्रा या रिकॉर्डिंग के लिए काम करनेवाले कलाकारों की हालत तो शायद लॉकडाउन खत्म होने के बाद भी न सुधरे। उनको रोजी-रोटी का जुगाड़ करना मुश्किल होगा। कुछ कलाकार आत्महत्या कर रहे हैं। कहीं मां-बाप को बच्चे घर से निकाल रहे हैं, तो कहीं बीमार बच्चों को मां-बाप। संबंधों और रिश्तों को निभाने का समय है, न कि इन्हें तोड़ने का। मैं अपने शिष्य-शिष्याओं को इन सच्चाइयों से अवगत करवाता हूं। यह समय प्रकृति ने फुर्सत से दिया है। इसका सदुपयोग करिए। जमकर रियाज करिए, पुरानी रिकॉर्डिंग सुनिए। अपना, अपने परिवार और समाज का ध्यान रखिए। हमें डरना नहीं है। हमें संभलना है। विश्वास और धैर्य से ही जीवन का पहिया घूमता है। एक स्वामीजी का कहना है कि—'कोई एक क्षण में है, वह अगले क्षण में नहीं है। यह जीवन क्षणभंगुर है। दुनिया अमर है, दुनियावाले अमर नहीं हैं।' यह लॉकडाउन के बाद का कड़ुवा सच होगा। जब हम बहुत से अपनों और गैरों को खो चुके होंगे।

(लेखक प्रसिद्ध हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायक हैं)

...कल फिर बदलेगी दुनिया

दुनिया बदलती है। कभी अपने आप से, कभी किसी कारण से। आज यह कोरोना वायरस और लॉकडाउन से पैदा हुए हालात से बदल रही है। कहां तक बदलेगी, कोई नहीं जानता। हां, इसके बदलने की शुरुआत हो चुकी है

देवेंद्र मेवाड़ी

लॉकडाउन में घर की चारदीवारी में रहते तीन माह से ऊपर हो गए। घर-बाहर मृत्यु-पाश लिए कोविड-19 वायरस घूम रहा है। सुना है, द्वार पार की दुनिया बहुत बदल गई है और दिन-ब-दिन बदलती जा रही है। जानता हूं, अभी और बदलेगी दुनिया। बहरहाल, इन दिनों तो शकील बदायूंनी याद आ रहे हैं :

लम्हे उदास-उदास फजाएं घुटी-घुटी
दुनिया अगर यही है तो दुनिया से बच के चल।

खबरें बता रही हैं कि हां, बाहर की दुनिया में हर आदमी बचता और बच-बचाता ही चला जा रहा है इन दिनों। नजरें चुराता, पहचान और रिश्ते छिपाता, कोई परिचित मिल ही जाए, तो दूर से ही नमस्कार करता, और डरता हुआ कि न जाने किसमें, किस रूप में छिपा हुआ हो वह जानलेवा कोरोना वायरस। रिश्ते एक दिन इस तरह बदल जाएंगे, कौन जानता था? भला चंद महीने पहले तक किसे पता था कि आदमी आदमी के दरमियान इस तरह फासले पैदा हो जाएंगे?

फासले ऐसे भी होंगे कभी सोचा न था
सामने बैठा था मेरे और वो मेरा न था।

—(अदीम हाशमी)

लॉकडाउन के नीम सन्नाटे में मन के संग दूर, बहुत दूर अतीत में जाकर देखता हूं अपने पुरखों की उस दुनिया को, जिसमें चारों ओर तब केवल प्रकृति थी। वनाच्छादित पर्वतमालाएं, हिमाच्छादित पर्वत शिखर, हरे-भरे घनेरे वन, विस्तृत मनमोहक मैदान, पहाड़ों से उतरकर मैदानों की धरती को सींचती-बहती सदानीरा नदियां, कल-कल निनाद करते झरने और तट से टकराती विशाल सागर की लहरों का गर्जन! वन-प्रांतर में कलरव करते पक्षी और कुलांचे भरते वन्य जीव। आती-जाती ऋतुएं, यानी प्रकृति में चारों ओर जीवन का अनोखा स्पंदन था। हर सुबह जीवन को जगाती सूरज की किरणें, नीले आसमान में अचानक घिर आते

नई दुनिया और रोबोट

लॉकडाउन के बाद 'टेली हेल्थ' का नया रास्ता खुलनेवाला है। चैटबॉट आपकी शुरुआती जांच-पड़ताल में मदद करेगा और उस जानकारी के बूते पर डॉक्टर आपको उपचार की सलाह देगा। कल की दुनिया में टेलीहेल्थ सिस्टम का तेजी से विस्तार होगा।

अस्पतालों में भी रोबोट काम करेंगे। अस्पतालों में जहां रोबोट मरीजों की सेवा के साथ ही डॉक्टर के रूप में जटिल ऑपरेशन भी करेंगे, तो होटल-रेस्तरांओं में साफ-सुथरे अनुशासित बेयरों की तरह खाना पकाएंगे और परोसेंगे। बाजारों में सेल्स-गर्ल या सेल्स-बॉय की तरह चीजें बेचने में हाथ बटाएंगे। ऑनलाइन भोजन की डिलीवरी भी रोबोट करेंगे।

रुपये-पैसे का लेन-देन भी हाथ से नोट तथा सिक्के गिनकर नहीं, बल्कि ऑनलाइन ही हो जाएगा, ताकि बीमारी के वायरस का लेन-देन न हो। इसकी शुरुआत पेटीएम और क्रेडिट-डेबिट कार्ड के रूप में हो चुकी है। हो सकता है, आनेवाले दिनों में एटीएम केबिन में आपको रोबोट गार्ड मिले जो भुगतान में स्वयं आपकी मदद करे।

रिमझिम बरसते बादल...आह! कितनी सुंदर थी हमारी वह पृथ्वी, हमारी धरती मां!

लेकिन, विकास की दौड़ में शहर फैले। चारों ओर सीमेंट और कंक्रीट के जंगल खड़े हो गए। आवागमन के लिए पक्की सड़कों का जाल बिछा। उन पर लाखों मोटरगाड़ियां दौड़ने लगीं। औद्योगिकीकरण ने वनों की और भी अधिक भूमि छीन ली। उनमें कल-कारखाने खड़े हो गए और रात-दिन धुआं उगलने लगे। फल यह हुआ कि दुनियाभर में वनों की हरियाली सिमटने लगी। वनों के अंधाधुंध कटान ने प्रकृति का चेहरा बदल दिया। जीवन के प्रतीक वन उजड़ने लगे। वनों में निवास करनेवाली जीव प्रजातियों के घर उजड़ गए। हवा में हर रोज लाखों टन विषैला धुआं घुलने लगा। वायुमंडल में विषैली गैस कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ने से गर्मी बढ़ती गई। 'ग्लोबल वार्मिंग', यानी 'वैश्विक तपन' से तपने लगी हमारी धरती। आबोहवा नाराज हो गई। हमारी दुनिया बदल गई।

आंख से न दिखनेवाले अदृश्य शत्रुओं ने समय-समय पर महामारियों के रूप में हमला बोला। कभी प्लेग, कभी चेचक, तो कभी हैजा और इंफ्लुएंजा। इन्होंने भी हमारी दुनिया बदली। दो-दो विश्वयुद्धों ने भी दुनिया में बहुत कुछ बदल दिया।

और अब, कोरोना वायरस कोविड-19 की महामारी ने पूरी मानव जाति के अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया है। चीन के वुहान शहर से कदम बढ़ाकर दुनियाभर में फैली इस जानलेवा महामारी ने दुनिया के कम-से-कम 2 अरब 60 करोड़ लोगों को लॉकडाउन में कैद कर दिया है। इस कैद ने इस बार दुनिया कुछ इस कदर बदल दी है कि उसका असर साफ दिखाई दे रहा है। अगर हम मनुष्यों ने सचमुच इस महामारी से सबक सीखा है, तो और बदलेगी हमारी यह दुनिया। अब तक क्या-क्या बदलाव आ चुके हैं लॉकडाउन के कारण, आइए उन पर नजर डालते हैं।

जो पहला साफ बदलाव लोगों को नजर आया, वह है आबोहवा में हैरान कर देनेवाला बदलाव। गैस चैंबर बनी दिल्ली की हवा में महज डेढ़-दो महीने के भीतर गर्दो-गुबार इतना कम हो गया कि आसमान नीला दिखाई देने लगा! रातों को आसमान में झिलमिलाते तारे नजर आने लगे। हवा में प्राणवायु ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ गई। उसमें भरपूर सांस लेना संभव हो गया। यमुना नदी के काले, कलुषित पानी में मछलियां दिखाई देने लगीं। स्कूटर, कार, बसें, मैट्रो, रेलगाड़ियां और हवाई जहाज न चलने के कारण शहर में कर्कश कोलाहल नहीं रहा जिसके कारण चारों ओर शांति छा गई। हम आदमी नामक दो-पाए जीवों की आमो-दरफ्त कम देखकर चिड़ियां घरों के करीब चली आईं। भोर में चिड़ियों की मधुर चहचहाहट सुनाई देने लगी। कई जगह मोर नाचने लगे और नीलगाएं सड़कों का जायजा लेने लगीं। जो कल तक अकल्पनीय था, वह संभव हो गया।

दिल्ली ही नहीं, कई दूसरे शहरों को भी प्रकृति ने इसी तरह संवार दिया। वहां भी हरियाली बढ़ गई और नदियों का पानी साफ हो गया। गंगा का पानी पारदर्शी हो गया जिसे पिछले कई दशकों से साफ करने की नाकाम कोशिशें की जा रही थीं। बरेली और सहारनपुर से इस पीढ़ी के लोगों ने पहली बार धवल हिमालय और जालंधर से बर्फ ढकी ऊंची धौलाधार पर्वतमाला को देखा। प्रकृति ने साफ संदेश दे दिया कि अगर स्वयं मनुष्य प्रकृति को प्रदूषित न करे, कल-कारखाने हवा में और

अनुमान तो यह भी है कि कल पढ़ाई भी घरों पर ही ऑनलाइन होगी। पढ़ाई और अध्यापन भी। शिक्षक ऑनलाइन पढ़ाएंगे। बच्चे स्क्रीन पर अपने शिक्षकों तथा शिक्षिकाओं को देख-सुनकर पढ़ाई करेंगे।

नदियों में जहरीले रसायन न उगलें और हरियाली पनपती रहे, तो आबोहवा इतनी ही नहीं, बल्कि इससे भी अधिक साफ रहेगी। शहरों की सुबहें भी पंछियों के कलरव से भर सकती हैं। अगर हम प्रकृति के इस संदेश पर अमल करेंगे, तो हमारे चारों ओर की दुनिया और बदलेगी और बेहतर होती जाएगी।

लेकिन, लॉकडाउन के निपट एकांत ने मन पर जो गहरे घाव बनाए हैं, उनका क्या? क्या वे भरेंगे? इस बीच हमारे रिश्तों में जो दरारें आ गई हैं, क्या वे भरेंगी? मगर बकौल शायर जॉन एलिया : 'क्या है जो बदल गई है दुनिया, मैं भी तो बहुत बदल गया हूं।'

हां मैं ही क्यों, लॉकडाउन में रह रहा हर आदमी बदल गया है। कोरोना के डर से वह रह-रहकर साबुन से हाथ धोना, घर से बाहर निकलते ही मास्क पहन लेना, हाथ या कुहनी मिलाने या गले मिलने से बचना, अब आदत में शुमार हो गया है। एक ऐसी आदत जो महामारी की छूत से बचने के लिए अवचेतन मन में लंबे अर्से तक बनी रहेगी। यह भी हो सकता है कि इस भय के कारण यह हमारी स्थाई आदत बन जाए और 'दूर से नमस्ते' करना हमारा अभिवादन का स्थाई संस्कार बन जाए। आखिर जापान के लोग भी तो कमर से झुककर सदियों से कोह-नी-ची-वाह कहकर अभिवादन कर ही रहे हैं। इस तरह भविष्य में हम सभी शारीरिक या देह दूरी बनाने की आदत डाल लेंगे। धीरे-धीरे हमें हाथ मिलाने, गले मिलने या गाल चूमने या छूने की आदत छोड़नी पड़ेगी।

लेकिन, कई देशों में लॉकडाउन के एकांत से जो तनाव और अवसाद मन में पैदा हुआ, उसके कारण घरेलू हिंसा की घटनाएं काफी बढ़ गईं। रिश्तों में उस कटुता को दूर करने के लिए उपचार करके तनाव से मुक्ति पाकर संबंधों में मिठास घोलनी होगी। लॉकडाउन ने हमें पहली बार अपने बच्चों और घर के बड़े-बुजुर्गों से अधिक बातचीत करने का मौका भी दिया है। इस बीच लोगों ने बच्चों को एक बार फिर मजेदार कहानियां और कविताएं सुनाईं। इस आदत को बनाए रखकर कल फिर दादी-नानी की कहानियों का नया दौर शुरू हो सकता है। अलगाव और एकांत झेल रहे बच्चे इन कहानियों से फिर अपने कल्पना-लोक में उड़ान भर सकेंगे। उन्हें बातें तो हम इस दौर की भी सुना सकेंगे कि–'प्यारे बच्चो, जो गुजारी न जा सकी हमसे, हमने वो जिंदगी गुजारी है,'–(जॉन एलिया)।

और, यह जो मजबूरी में घर से दफ्तर का काम करने की नई रवायत शुरू हुई है, जानकार लोग कह रहे हैं कि कल काम करने का यही मुकम्मल तरीका बन जाएगा। असल में, दुनिया के कई देशों में तो बड़ी कंपनियां यह तय भी कर चुकी हैं कि अगले कुछ वर्षों के भीतर नौकरीशुदा लोग घर से ही काम करें। न दफ्तर का किराया, न रख-रखाव, न आने-जाने का खर्चा, न ओवरहेड खर्चे। तब क्यों न घर से ही ऑनलाइन काम कराया जाए? यह बात अलग है कि तब शायद महिलाओं पर काम का दुहरा दबाव पड़े, यानी नौकरी का काम भी और घर में छोटे बच्चों की देखभाल भी, लेकिन घर से काम करने की नई संस्कृति में ऐसी कुछ समस्याएं तो आएंगी ही और खुद ही उनका समाधान भी खोजना होगा।

नौकरी ही क्यों, अनुमान तो यह भी है कि कल पढ़ाई भी घरों पर ही ऑनलाइन होगी। पढ़ाई और अध्यापन भी। शिक्षक ऑनलाइन पढ़ाएंगे। बच्चे स्क्रीन पर अपने शिक्षकों तथा शिक्षिकाओं को देख-सुनकर पढ़ाई करेंगे। कहा तो यह भी जा रहा है कि कल रोबोट शिक्षक पढ़ाएंगे, बल्कि चीन और जापान-जैसे देशों में तो यह काम शुरू भी हो चुका है।

अनेक सेवाएं ऑनलाइन हो जाने के कारण बहुत सक्षम इंफॉर्मेशन-कम्युनिकेशन टैक्नोलॉजी की जरूरत पड़ेगी। आनेवाले समय में यह जरूरत पूरी की जाएगी। 5-जी टैक्नोलॉजी इस दिशा में खासी मदद कर रही है। नेट सर्वत्र सुलभ और समर्थ होने के कारण ऑनलाइन निर्भरता बढ़ती जाएगी। फोन हो चाहे वीडियो कॉल या सोशल मीडिया, हर आदमी उसी के जरिये यार-दोस्तों, रिश्तेदारों और बाकी दुनिया से जुड़ा रहेगा। रू-ब-रू बातचीत करने की जो गूढ़ कला हमने सदियों में सीखी, उसकी जगह अपनी ही खामोशी में हम दूर-दूर तक लोगों से जुड़ेंगे।

गर्ज यह कि बहुत बदल जाएगी हमारी कल की दुनिया। लॉकडाउन में घर के भीतर बैठकर द्वार के पार देखते हुए उस दुनिया की कल्पना कर रहा हूं, तो कतई ताज्जुब नहीं हो रहा है। भला हो भी क्यों? सत्तर वर्ष पहले अपनी लकड़ी की पाटी (तख्ती) में सरकंडे की कलम और सफेद मिट्टी के घोल में डुबाकर बारहखड़ी लिखते समय भला मैं कहां सोच सकता था कि कल रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, फोन, मोबाइल, कंप्यूटर, फ्रिज, वॉशिंग मशीन, माइक्रोवेव, मेट्रो रेल और स्वचालित सीढ़ियां होंगी। हवाई जहाज और हेलीकॉप्टर होंगे। मानव चंद्रमा पर कदम रख देगा और अंतरिक्ष यान सौरमंडल के ग्रह-उपग्रहों की पड़ताल करेंगे। तब कहां सोच सकता था मैं कि हवाई जहाज में बैठकर खुद देश-विदेश की सैर करूंगा! लेकिन, धीरे-धीरे मेरी दुनिया बदल गई और शायद मैं भी बदल गया। कल फिर दुनिया बदलेगी और आज की युवा पीढ़ी और बच्चे उस बदली हुई दुनिया को देखेंगे। महामारियां तो आती और जाती रहती हैं। वैज्ञानिकों ने जैसे दूसरे जानलेवा वायरसों के लिए वैक्सीन और टीके खोज लिए, उसी तरह देर-सबेर कोविड-19 वायरस की दवा भी खोज ही ली जाएगी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदमों के साथ यह दुनिया और भी बदल जाएगी।

(लेखक प्रसिद्ध विज्ञान लेखक हैं)

वही नहीं रहेंगे देश-दुनिया के रिश्ते

लोकतंत्र की ताकत है, तो कुछ कमजोरियां भी हैं। कूटनीतिज्ञ की नजर से देखें, तो इसकी अच्छी बात यही है कि सरकारें भले इसमें बदलती रहती हैं, लेकिन यदि विदेश नीति बन गई, तो वह शायद ही बदलती है। मगर राजनीतिक दांव-पेंच के कारण यदि हुकूमत विदेश नीति के प्रति संजीदा नहीं हुई तो...? यहीं हमें लोकतांत्रिक व्यवस्था कमजोर नजर आती है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। यहां पूर्व में कई ऐसे मौके आए हैं, जब बेहतर नीतियों की कमी साफ-साफ महसूस की गई। उसका हमें नुकसान भी हुआ। मगर अब, जबकि कोरोना वायरस वैश्विक कूटनीति को व्यापक रूप से बदल रहा है, भारत के पास फिर से एक बेहतर मौका है कि वह नेतृत्व की भूमिका में सामने आए। अच्छी बात है कि हमारी सरकार इस दिशा में सक्रिय होती दिख भी रही है।

शशांक

सबसे बड़ा बदलाव तकनीक और प्रौद्योगिकी के मोर्चे पर हो रहा है। कोरोना संक्रमण काल की दुनिया में यह स्पष्ट तौर पर दिखा

दुनिया बदल रही है। दुनिया के रिश्ते बदल रहे हैं। बातचीत के तौर-तरीके बदल रहे हैं। सीधे मेल-मुलाकातों के बजाय वर्चुअल मुलाकातों पर जोर है। भारत की पहल पर ही इस बार जी-20 की बैठक वीडियो कांफ्रेंसिंग के जरिये हुई। ऐसा बहुत कुछ है, जो उम्मीद जगाता है कि भारत इन बदले हुए हालात में दुनिया का नेतृत्व कर सकता है

अबज-गजब प्रयोग

'कोरोना' भले ही महामारी है और 'लॉकडाउन' इसकी मजबूरी। लेकिन इनसान तो फिर आखिर इनसान ही है। वह परेशानी में भी उसका हल निकाल ही लेता है। उसे पता है कि यह परेशानी जल्दी जानेवाली नहीं है। अब उसे इसके साथ ही रहना है, तो फिर रोकर या कुढ़कर क्यों रहा जाए? कुछ नया किया जाए। इससे अपने साथ-साथ दूसरों का भी इस बीमारी से ध्यान हटेगा, ज्यादा नहीं तो कुछ हद तक मनोरंजन भी होगा। ऐसे माहौल में क्या इतना काफी नहीं है?

कुछ ऐसा ही प्रयोग वर्जिनिया के एक रेस्तरां मालिक ने किया है। 'लॉकडाउन' में ढील मिलने के बाद 29 मई से खुले मिशेलिन स्टार रेस्तरां में पुतलों के लिए भी बुकिंग की जा सकेगी। इस रेस्तरां के प्रवक्ता का कहना था कि रेस्तरां अपनी क्षमता से पचास फीसदी कम लोगों की ही मेजबानी करेगा। पुतलों की बुकिंग को लेकर उनकी बड़ी मजेदार सोच है कि पुतलों को मेहमानों के बीच बैठाया जाएगा, जिससे उन्हें अकेलापन महसूस नहीं होगा। उनका मनोरंजन भी होगा। सबसे बड़ी बात यह कि 'सोशल डिस्टेंसिंग' का पालन भी बहुत आराम से होगा।

कि कूटनीतिज्ञों ने 'फिजिकल ट्रांसपोर्टेशन' कम-से-कम किया। इसका मतलब है कि उन्होंने अन्य देशों की नाममात्र की यात्राएं कीं, एक-दूसरे से दैहिक संपर्क कम-से-कम रखा और भेंट-मुलाकातें बहुत कम हुईं। शासनाध्यक्षों के बीच सीधी बातचीत होने लगी। जाहिर है, कूटनीतिज्ञों की भूमिका अब सिमटती दिखने लगी है। अब तक यही होता रहा है कि कूटनीतिज्ञ, चूंकि दूसरे देश में अपने राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए उन्हें उस देश की पृष्ठभूमि और सामान्य बात-व्यवहार की पूरी जानकारी होती है। उन्हें पता होता है कि उस देश की उनके राष्ट्र के प्रति क्या सोच है? इसी आधार पर उनके देश की सरकार कूटनीति तैयार करती रही है। शीर्ष नेतृत्व के बीच मुलाकातें भी उसी आधार पर तय होती रही हैं।

मगर अब सब कुछ डिजिटल हो चला है। शासनाध्यक्षों की आपसी मुलाकातें वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये होने लगी हैं। वेबिनार हो रहे हैं। यह समझना चाहिए कि कूटनीति में जितनी मेहनत सामने दिखती है, उससे कहीं अधिक पर्दे के पीछे होती है। जून के प्रथम सप्ताह में आयोजित भारत और ऑस्ट्रेलिया का पहला आभासी (वर्चुअल) शिखर सम्मेलन इसका ताजा उदाहरण है। इसमें समोसा-खिचड़ी की कूटनीति की खूब चर्चा हुई। ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री ने तो हमारे प्रधानमंत्री से वादा किया कि अगली बार व्यक्तिगत रूप से मिलने पर वह उन्हें गुजराती खिचड़ी बनाकर खिलाएंगे। इससे समझा जा सकता है कि कूटनीति सिर्फ शासनाध्यक्षों की आपसी बातचीत तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि यह खान-पान और बात-व्यवहार में भी शामिल होती है। पर्दे के पीछे के ये काम कोई राजनेता नहीं, कूटनीतिज्ञ करते हैं। आनेवाले दिनों में, जब कई काम वर्चुअल होंगे, कूटनीतिज्ञों की जिम्मेदारी बढ़ जाएगी कि आभासी दुनिया में भी वह किस तरह वास्तविक दुनिया का लाभ कमा सकें।

भारत के लिए सुखद यह है कि वह तकनीक के मोर्चे पर बेहतर स्थिति में है। भारत की पहल पर इस बार जी-20 की बैठक वीडियो कॉंफ्रेंसिंग के जरिये आयोजित की गई।

भारत के लिए सुखद यह है कि वह तकनीक के मोर्चे पर बेहतर स्थिति में है। भारत की पहल पर ही इस बार जी-20 की बैठक वीडियो कॉंफ्रेंसिंग के जरिये आयोजित की गई। आईटी क्षेत्र के हमारे विशेषज्ञ दूसरे देशों में अपनी सेवा देकर भारत का नाम रोशन कर रहे हैं। मुमकिन है कि आनेवाले दिनों में उनकी वतन-वापसी हो, और वे मुल्क में रहकर राष्ट्र की सेवा करें। इससे स्वाभाविक तौर पर उन देशों को दिक्कत होगी, जो तकनीक और प्रौद्योगिकी के मोर्चे पर कमजोर हैं। और यहीं भारत के लिए मौका होगा कि वह नेतृत्व की भूमिका में आए।

ज्ञान बांटने की हमारी नीति इसमें एक कारगर हथियार साबित होगी। अब तक भारत 'नॉलेज शेयर' के प्रति काफी संजीदा रहा है। आदिकाल से अब तक हमने तमाम क्षेत्रों में दुनियाभर के देशों की मदद की है। यही वजह है कि दूसरे देश हमें 'ज्ञान का स्वर्ग'-जैसी उपमाएं देते रहे हैं। उन्हें लगता है कि जिस तरह तमाम विभूतियां यहां पैदा हुईं, वह किसी जन्नत में ही संभव है। इस सोच को हमें अधिक-से-अधिक व्यापक बनाना होगा। इसके उलट, दूसरे देश, खासतौर से पश्चिमी राष्ट्र, अपने ज्ञान को खुद तक समेटने में विश्वास रखते हैं। 'हरित आंदोलन' का उदाहरण सामने है कि किस तरह हमारी आत्मनिर्भरता की राह विकसित राष्ट्रों ने रोकने की कोशिश की। इसलिए अब, जब अधिकतर काम तकनीक के भरोसे होंगे; आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता में हमारी कामयाबी हमें अन्य राष्ट्रों से काफी आगे ले जा रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता में भारत की भाषा काफी काम की मानी जाती है। इसका फायदा भी हमें आनेवाले दिनों में मिलेगा।

व्यावहारिक कामकाज में भी भविष्य में भारत का रुतबा बढ़ने का अनुमान है। एशियाई देशों का ही उदाहरण लें। यहां चीन ने जरूर धन-संपदा इकट्ठी कर ली है, लेकिन 'बेल्ट रोड इनीशिएटिव' (बीआरआई)-जैसी महत्त्वाकांक्षी परियोजना खुद उसकी राह में रुकावट बनती दिख रही है। यह देखने में आया है कि इस इनीशिएटिव के तहत जिन-जिन देशों में काम हो रहे हैं, वहां कोविड-19 का प्रसार ज्यादा हुआ है। इससे उन देशों पर चीन का कर्ज बढ़ता गया है। लिहाजा अब वे तमाम देश अपने लिए राहत की मांग कर रहे हैं। राहत इसलिए भी, क्योंकि चीन जब भी कोई कर्ज देता है, तो उसके नियम-कायदे ऐसे होते हैं कि कर्ज न चुका पाने की स्थिति में वह उस देश की भौतिक संपदा पर अपना अधिकार जमा लेता है।

श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह पर तो बीजिंग ने 99 साल का अधिकार ले लिया है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि बीआरआई के तहत काम करानेवाले देशों की नजर में अब भौतिक तरक्की ज्यादा मायने नहीं रखेगी, उन्हें अब तकनीकी तरक्की की दरकार होगी। इसमें स्वाभाविक तौर पर भारत उन्हें अपना हितैषी राष्ट्र नजर आएगा। नई दिल्ली की यह नीति भी उन देशों के लिए मुफीद है कि भारत कभी ताकत हथियाने की कोशिश नहीं करता और न वह किसी को अपना उपनिवेश बनाने की ख्वाहिश पालता है। अलबत्ता, भारत हर वक्त मदद के लिए खड़ा रहता है। तमाम मतभेदों के बावजूद भी हमने पिछले दिनों अमेरिका को हाइड्रोक्सीक्लोरोक्वीन दवा मुहैया कराई। कई देशों को मुफ्त में भी यह निर्यात की गई। इससे स्वाभाविक तौर पर 'अमेरिका फर्स्ट' या 'यूरोप फर्स्ट'-जैसी नीतियों को भी झटका लगेगा। यह सही है कि कोरोना के खिलाफ लड़ाई में हमने कुछ गलतियां कीं। हमने इसके लिए पश्चिमी देशों का मुंह ताका, जबकि हमारे आसपास ही कुछ देशों ने बेहतर काम करके अपने यहां कोरोना वायरस का संक्रमण थाम लिया। इससे हमें सबक लेना चाहिए। संभव है कि आनेवाले दिनों में कुछ ऐसी नीतियां तैयार हों, जिनमें दुनियाभर के मुल्कों की अच्छी-अच्छी नीतियां शामिल की जाएं। इसका असर वैश्विक कूटनीति पर भी होगा। वहां भी हमें बदलाव देखने को मिलेंगे, और उसमें वही देश नेतृत्व की भूमिका में दिखाई दे सकते हैं, जो सभी को साथ लेकर चलने में विश्वास करते हों। इसका असर हमारे पड़ोस में भी पड़ेगा। अभी बेशक चीन और पाकिस्तान-जैसे देश हमें नुकसान पहुंचाने की जुगत में ज्यादा दिखाई देते हैं, लेकिन सच यह भी है कि उन्हें इसके लिए पश्चिमी देशों से शह मिलती है। एक तरफ पश्चिमी राष्ट्र हमारा मददगार होने का दावा करते हैं, तो दूसरी तरफ रूस पर निशाना साधने के लिए चीन और पाकिस्तान की परोक्ष रूप से सहायता भी करते हैं। कोविड-19 के बाद की दुनिया में ऐसी कूटनीति की शायद ही जगह बचेगी।

(लेखक पूर्व विदेश सचिव हैं)

नए तेवर और मिजाज का बाजार

दुनिया बदलेगी तो बाजार भी बदलेगा। हम उसे बदलते देख रहे हैं। उस बदलाव ने परंपरागत और ऑनलाइन बाजार दोनों के लिए नए-नए दरवाजे खोल दिए हैं। अब ये नए तेवर और मिजाज के साथ हमारे सामने होंगे

बाजार अप्रत्याशित तेवर, मिजाज और सम्मोहन के साथ पूरी तरह नए कलेवर में अवतरित हो रहा है। उसके प्रायः समस्त कार्यव्यापार तेजी के साथ एक आभासी माया-प्रपंच से संचालित होते-से प्रतीत हो रहे हैं। एक वैश्विक डिजिटल तंत्र का उदय हो चुका है। डिजिटल प्लेटफॉर्मों के जरिये दुनियाभर में बाजार, वित्त, अर्थ और जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों का कायाकल्प होता जा रहा है। प्लेटफॉर्मों पर जिन कंपनियों का स्वत्वाधिकार है, वे अधिकांशतः बहुराष्ट्रीय या वैश्विक हैं। बाजार में उन्हीं का सिक्का चल रहा है।

कृष्णस्वरूप आनंदी

डिजिटल संसार में 'बिग डेटा' सबसे महत्त्वपूर्ण आधारभूत संसाधन है। विभिन्न जानकारी-स्रोतों, अतल गहराइयों, खदानों या सुरंगों से खंगाल करके उन्हें प्रतिपल संग्रहित किया जा रहा है। कंपनियां बिग डेटा को 'डिजिटल इंटेलिजेंस' में बदल रही हैं। इस कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) से बाजार, वित्त और अर्थ को नियंत्रित और संचालित किया जा रहा है।

टैक्सी सेवाएं देनेवाली कंपनियों के उदाहरण से चौपहिया वाहनों द्वारा आवाजाही के ऐप-आधारित कारोबार में बिग डेटा के केंद्रीय महत्त्व को रेखांकित किया जा सकता है। सच कहा जाय, तो इन कंपनियों की मुख्य परिसंपत्ति कारों और ड्राइवरों का नेटवर्क या संजाल उतना बिल्कुल भी नहीं है जितना अधिक अहम सड़कों के जाल, यातायात, सार्वजनिक परिवहन, प्रमुख आंचलिक घटनाओं या आयोजनों की विधिवत जानकारी, घरों से कार्यस्थलों तक की यात्राओं के ब्यौरे, दैनिक यात्रियों एवं ड्राइवरों के व्यक्तिगत व्यवहार-संबंधी अभिलक्षणों को केंद्र में रखकर डिजिटल इंटेलिजेंस का विकास है। इसी तरह हर क्षेत्र में बाजार अपने डिजिटल प्रभुत्व को नित नए आयाम देता जा रहा है। कोई भी क्षेत्र ले लीजिए, वहां डेटा-आधारित कृत्रिम बुद्धिमत्ता की तूती बोल रही है जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, मीडिया, हॉस्पिटैलिटी (आतिथ्य-सत्कार), वस्तुओं व सेवाओं के क्रय-विक्रय से जुड़ी समस्त कारोबारी गतिविधियां।

बाजार में ऑनलाइन लेन-देन और कारोबार 'दिन दूना-रात चौगुना' बढ़ने की ओर तत्पर हैं। आज जिस अर्थव्यवस्था का उदय हो रहा है, दरअसल वह 'गिग इकोनॉमी' कही जाती है। वह परंपरागत बाजार-अर्थव्यवस्था के एकदम उलट है। यहां पर सब कुछ क्षणिक, त्वरित, तदर्थ या अस्थायी है। सारे कार्यव्यापार गिग इकोनॉमी में अल्पकालीन, चटपट या तात्कालिक हैं। गतिविधियों में चाह, चपलता, लालसा और त्वरित निपटान (किसी वस्तु या सेवा से झटपट फारिग होने की जल्दबाजी) के साथ ही, ऑनलाइन भुगतान का आग्रह भी है।

पूंजी व प्रौद्योगिकी प्रधान विनिर्माण-संयंत्रों में ऑटोमेशन/रोबोटिक्स के चलते 55 से लेकर 85 प्रतिशत तक औद्योगिक व प्रक्रियागत कामकाज रोबोट व सॉफ्टवेयर के हवाले होंगे। इसके परिणामस्वरूप भारी संख्या में तरह-तरह के कुशल/तकनीकी कामगार विस्थापित होंगे। अमीर देशों के क्लब ओईसीडी में रोजगार के 57 प्रतिशत अवसरों पर खतरा मंडरा रहा है। चीन में यह आंकड़ा 77 प्रतिशत और भारत में 69 प्रतिशत तक जा सकता है। विश्वव्यापी कोविड-19 संक्रमण के चलते भौतिक दूरी के मानक पर खरा उतरने के लिए कंपनियां ऑटोमेशन/रोबोटीकरण/आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस/इंटरनेट ऑफ थिंग्स का अधिकाधिक आश्रय लेती जाएंगी जिसके चलते छंटनी के दौर चलेंगे। इसी के साथ

'गिग इकोनॉमी' की ओर

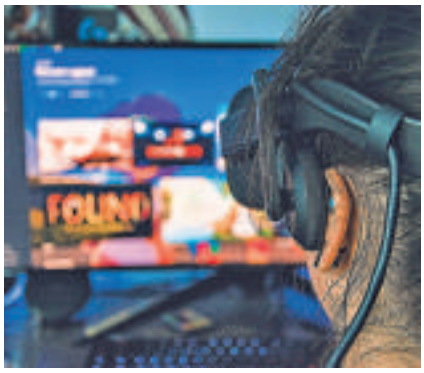

'गिग इकोनॉमी' मुस्तकिल कार्यकर्ताओं, सेवाप्रदाताओं, प्रबंधकों या अधिकारियों पर निर्भरता कम-से-कम रखती है। आज के ऑनलाइन बाजार से जुड़े दलालों, धावकों, कारिंदों या कर्मियों को फ्रीलांसर, स्वरोजगारी ठेकेदार अथवा छोटे दर्जे के उद्यमी कहा जाने लगा है। बहुतायत में इस्तेमाल हो रहे कुछ लोकप्रिय शब्दों के नाम उल्लेखनीय हैं—'माइक्रो-बिजनेसेज', 'गिग्स', 'टास्क्स', 'फेवर्स', 'सर्विसेज', 'डिलीवरीज' आदि। ऑनलाइन कारोबार और चमक-दमक में जो वास्तविक, दृश्यमान या जमीनी हरकारे या कारिंदे होते हैं, उन्हें 'स्वतंत्र कार्यकर्ता' भी कहा जाता है। उनमें न्यूनतम या कामचलाऊ कुशलता होती है, लेकिन उनसे अधिकतम उपलब्धता की शत-प्रतिशत अपेक्षा रखी जाती है।

रोबोट और सोशल डिस्टेंसिंग

'कोरोना' से बचाव के लिए 'सोशल डिस्टेंसिंग' की अहम भूमिका है। यह भूमिका आगे भी रहेगी, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता है। भले ही इसकी दवाई और वैक्सीन आ जाएं, लेकिन सामाजिक दूरी इस बीमारी के लिए एक मजबूत और कारगर हथियार है। इस बात को दुनियाभर में माना गया है।
सिंगापुर ने इसके लिए पहल भी कर दी है। लोगों को 'सोशल डिस्टेंसिंग' का पाठ पढ़ाने के लिए एक पार्क में रोबोट की तैनाती कर दी गई है। बोस्टन डायनेमिक्स स्पॉट रोबोट के जरिये लोगों के बीच दो मीटर की दूरी बनाए रखने में मदद मिलेगी।

हिन्दुस्तान
तरक्की का नया नज़रिया

रविवार, रविवार नहीं अगर फुरसत नहीं.

आईए फुरसत से जानें फुरसत में अपनों को, अपने परिवार को, अपने दोस्तों को, अपनी दुनिया को. क्योंकि 'फुरसत' में है, सबके लिए कुछ न कुछ.

हर रविवार* हिन्दुस्तान के साथ मुफ़्त

*चुनिंदा शहरों में उपलब्ध ।
अपनी प्रति सुनिश्चित करने के लिए अपने अखबार वितरक से सम्पर्क करें ।

ही, महामारी ने ऑनलाइन बाजार के लिए संभावनाओं के नए-नए द्वार एक-एक करके खोले हैं। ई-कॉमर्स असंगठित खुदरा कारोबार को बुरी तरह प्रभावित करेगा। इतना ही नहीं, उसकी आंच संगठित खुदरा कारोबार तक पहुंच रही है।

ई-कॉमर्स के बढ़ते प्रभुत्व के चलते बड़ी-बड़ी ऑनलाइन कंपनियों और संगठित खुदरा कारोबारी कॉरपोरेट-संचालित शृंखलाओं के बीच गठजोड़ की प्रवृत्ति पनप रही है। यह देखा जा रहा है कि कई ई-कॉमर्स कंपनियां ग्राहकों के दरवाजे तक उत्पाद पहुंचाने के लिए बड़े-बड़े खुदरा चेन स्टोरों के साथ मिलकर काम कर रही हैं। ई-कॉमर्स और संगठित खुदरा कारोबार के बीच बढ़ते वाणिज्यिक तालमेल के चलते छोटी व मझोली दुकानदारी बुरी तरह प्रभावित होगी। एक दूसरी प्रवृत्ति भी देखने को मिल रही है। बड़े-बड़े ऑनलाइन दिग्गज कॉरपोरेट-समूह अपने मौजूदा डिजिटल प्लेटफॉर्मों को मजबूती के साथ बरकरार रखते हुए ईंट-चूने-गारे से निर्मित स्टोरों/आउटलेटों की शृंखलाएं भी खड़ी कर रहे हैं। इसी तर्ज पर बड़ी-बड़ी संगठित खुदरा कारोबारी शृंखलाएं ई-कॉमर्स के क्षेत्र में ताल ठोंककर उतर रही हैं। ऑनलाइन मार्केटप्लेस और ऑफलाइन शॉपिंग मॉल के बीच अन्योन्याश्रित कारोबार का आक्रामक तंत्र विकसित, सुदृढ़ और व्यापक होता जा रहा है।

ऑनलाइन कारोबार अथवा ई-कॉमर्स ने गांव-गिरांव, गली-मोहल्ले-नुक्कड़, चौक-चौराहे या अड़ोस-पड़ोस की दुकानों; पटरी-रेहड़ीवालों; स्थानीय या क्षेत्रीय हाट-बाजारों तथा कस्बाई-शहरी-महानगरीय बिक्री-केंद्रों के देशव्यापी संजाल में जबरदस्त सेंधमारी कर ली है। ध्यान देने की बात है कि खेतीबाड़ी के बाद अनौपचारिक व असंगठित खुदरा कारोबार सबसे बड़ा रोजगार-प्रदाता क्षेत्र है। अगर यहां बड़े पैमाने पर विस्थापन होता है, तो भीषण बेरोजगारी फैलेगी।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कोरोना काल में लॉकडाउन के दौरान जब देशभर में आपूर्ति-शृंखला पटरी से उतरी हुई थी, तब खेती-किसानी करनेवाले अन्नदाताओं, फल-सब्जियां बेचनेवाले ठेले-दुकानदारों तथा घर-घर दूध पहुंचानेवालों ने देशवासियों को खाने-पीने की बेहद जरूरी और उपयोगी चीजें मुहैया कराई थीं। इन्हें भी अगली कतार के कोरोना योद्धाओं में शुमार किया जाना चाहिए। बाजार की नई व्यूह-रचना इनके लिए खतरनाक साबित होगी। बिक्री आउटलेटों के विविध फॉर्मेट और उनके ऑनलाइन अवतार—सुपर मार्केट, हाइपर मार्केट, मेगा स्टोर, शॉपिंग मॉल, डिपार्टमेंटल स्टोर आदि छोटे-मझोले किराना/पंसारी/परचूनी दुकानों के लिए गंभीर खतरा बन सकते हैं।

कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि भारत-जैसे विशालकाय बाजार में दोनों का सह-अस्तित्व बना रहेगा, हालांकि इससे सहमत होने का कोई ठोस आधार या तर्क दूर-दूर तक नहीं नजर आता। मैक्सिको का उदाहरण हमारे सामने है जहां एक वैश्विक खुदरा कारोबारी समुदाय ने देशज व स्थानिक दुकानदारी के परखच्चे उड़ा दिए। कोरोना संक्रमण की महामारी के चलते देशभर में लॉकडाउन लागू हुआ था। करोड़ों कामगार, मजदूर, व्यापारी, व्यवसायी, किसान, उद्यमी और स्वरोजगारी लोग तबाह हुए। ढेर-सारे लोग भुखमरी, बीमारी, दुर्घटना और बेकारी के चलते जान से हाथ धो बैठे। करोड़ों की आबादी का निवाला, रोजगार और सुख-चैन छिना, लेकिन बंबई स्टॉक एक्सचेंज (बीएसई) पर सूचीबद्ध सभी कंपनियों के कुल बाजार पूंजीकरण, यानी एम-कैप में 23 मार्च से 28 मई के दौरान 23 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। उल्लेखनीय है कि 8 बड़े कारोबारी घराने या समूह नए कोरोना योद्धा के तौर पर उभरे। उन्होंने अपने दम पर बीएसई पर सूचीबद्ध समस्त कंपनियों के कुल बाजार पूंजीकरण में 30 प्रतिशत का योगदान किया। जाहिर है कि इन महाबलियों का अलग-अलग बाजार पूंजीकरण औसत वृद्धि-दर 23 से कहीं तेज रफ्तार से, निश्चय ही बढ़ा था।

एक उदाहरण पड़ोसी देश चीन का लेते हैं। मई, 2020 के दौरान विदेश व्यापार में उसे 62.93 अरब डॉलर की बेशी या बढ़त की खुशी हासिल हुई, क्योंकि सारी दुनिया में कोरोना महामारी से निपटने के लिए उसने तमाम देशों को भारी संख्या व मात्रा में पीपीई किट्स और चिकित्सीय उपकरण व साज-सरंजाम बेचे। जिस समय कोरोना महामारी के चलते सारी दुनिया में अर्थव्यवस्था का चक्का काफी हद तक जाम था और प्रायः सभी देश व्यापार-घाटे का दंश झेल रहे थे उस समय चीन व्यापार-अधिशेष से लबालब भरा रहा। इन अचंभों को देखकर यही कहना पड़ता है कि बाजार की शक्तियां न्यारी हैं और बाजार की गति न्यारी है।

(लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं)

ई-कॉमर्स के बढ़ते प्रभुत्व के चलते बड़ी-बड़ी ऑनलाइन कंपनियों और संगठित खुदरा कारोबारी कॉरपोरेट-संचालित शृंखलाओं के बीच गठजोड़ की प्रवृत्ति पनप रही है।

कला का हिस्सा है बदलाव

इस महामारी की मार कला पर भी पड़ी है। घरों में कैद लोग कला से दूर होते जा रहे हैं। लेकिन यह भी सच्चाई है कि कला ही हमें इस दौर से बाहर निकलने में मदद करेगी, कम-से-कम मानसिक रूप से तो जरूर। कला की दुनिया बदल रही है। कुछ-कुछ बदलाव वर्चुअल अभ्यास के रूप में दिखने भी शुरू हो गए हैं। यों भी बदलाव कला का हिस्सा रहे हैं

कलाकार जब प्रस्तुति देने के लिए मंच पर आते हैं, उस समय वे उमंग और उत्साह से भरे होते हैं। हम कलाकारों के लिए कोई भी आयोजन एक उत्सव की तरह होता है। हमारी प्रस्तुतियों को देखकर दर्शक या श्रोता को नया अनुभव होता है। वह दिल को छूनेवाली प्रस्तुतियों को देख-सुनकर उसकी खुशबू को महीनों तक महसूस करता है, क्योंकि सजीव या जीवंत प्रस्तुतियां जीवनदायिनी होती हैं। वे अहसास की तरह आपको अंदर से नया कर देती हैं।

अदिति मंगलदास

इस वर्ष, यानी 2020 का हम लोगों ने बहुत उत्साह से स्वागत किया था, लेकिन कोरोना महामारी ने आम और खास सभी लोगों को हिलाकर रख दिया है। मैं ईश्वर की शुक्रगुजार हूं कि हमारे पास रहने को अपनी छत और खाने-पीने की कमी नहीं है, पर हजारों कलाकारों के बारे में सोचती हूं, तो मन मायूस हो जाता है। लोक कलाकार, आदिवासी कलाकार, कुछ स्वतंत्र कलाकार अपना गुजारा कैसे करेंगे? मैं यह बार-बार सोचती हूं कि इनकी सहायता कौन करेगा? कुछ कलाकारों ने लॉकडाउन के दौरान उनकी आर्थिक मदद की है। यह स्थाई समाधान नहीं है। लॉकडाउन के बाद, उनके सामने और भी चुनौतियां होंगी, क्योंकि अभी लंबा समय लगेगा, स्थितियों को सामान्य होने में।

दरअसल, मैं महसूस करती हूं कि मैं जो भी हूं, जैसी भी हूं, अच्छी या बुरी, मैं अपनी स्वाभाविक छवि के साथ सबके सामने हूं, हालांकि कभी-कभी हम लोग बहुत आसान रास्ता अपनाते हैं। कहीं पर या किसी समस्या के सामने आते ही हम उसका खुद समाधान ढूंढ़ने के बजाय, 'गुरु से पूछ लेंगे'। वह सरल रास्ता चुनते हैं। मैं यह नहीं कहती कि यह सही है या गलत, पर कुछ सवालों का जवाब तो हमें अपने अनुभव से भी चुनना चाहिए। मैं अपनी गुरुओं की शिष्या हूं। उनसे कई वर्षों तक सीखा है,

एक चेतावनी यह भी...

'कोरोना' से बचने के लिए अपनाए गए 'लॉकडाउन' से दुनियाभर में 'वर्क फ्रॉम होम' का चलन बढ़ा है। बहुत सारे ऑफिस ऐसे हैं, जो इसे अभी और चलाए जाने के पक्ष में हैं। कुछ संस्थान इसे लंबे समय तक चलाने जाने के पक्ष में हैं, तो कुछ इसे स्थायी व्यवस्था के रूप में अपने संस्थान में लागू करने की सोच रहे हैं। ऐसा करने के पीछे सबकी अपनी-अपनी सोच है। इन सबके बीच एक बात जो कॉमन है, वह यह है कि इससे संस्थान का काफी पैसा बच रहा है। लेकिन माइक्रोसॉफ्ट के सीईओ सत्य नडेला इन सब बातों से इत्तेफाक नहीं रखते। उनका मानना है कि, 'वर्क फ्रॉम होम' को स्थाई व्यवस्था बनाने से श्रमिकों के सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर असर हो सकता है।' उनका मानना है कि, 'वर्चुअल वीडियो कॉल के जरिये होनेवाली बैठक आमने-सामने होनेवाली बैठकों की जगह नहीं ले सकती।' नडेला ने इसके गंभीर परिणाम की संभावना जताई है।

सीखती रही हूं और सीखती रहूंगी। उस सीख को अपना बनाती रहूंगी, लेकिन उसकी कॉपी करना मुझे उचित नहीं लगता है। मैं अपनी गुरुओं की सीख को जीवन के साथ जोड़ना चाहती हूं, इसलिए इस कठिन समय में भी मैं अपने नृत्य और घुंघरूओं के सहारे हूं। इसने मुझे हिम्मत और इस दौर से निकलने का रास्ता दिया है।

कुछ बरसों से इंटरनेट, यू-ट्यूब और स्काईप-क्लासेज के जरिये लोग शास्त्रीय नृत्य और संगीत सीख रहे हैं। विदेशों या देश के सुदूर प्रदेशों में रहनेवाले मेरे कई परिचित-प्रशंसक हैं, जो सीखते हैं। मुझे लगता है कि आधुनिक तकनीक का प्रयोग करके शौकिया तौर पर थोड़ा-बहुत नृत्य सीखा जा सकता है, लेकिन प्रोफेशनल डांसर बनने के लिए तो आपको गुरु के सान्निध्य में आना ही पड़ेगा। वैसे भी यह गुरुमुखी विद्या है। आपको एक-एक अंग को कैसे रखना है, किस अंदाज में और कितना कलाई को घुमाना है, पैर को कितने वजन के साथ रखना है? ये सारी चीजें हर किसी के व्यक्तित्व और दैहिक बनावट के हिसाब से गुरु सिखाते हैं। इसका कोई तयशुदा फॉर्मूला नहीं है, जिसे आप सीखकर मास्टर बन जाएं। यह संभव नहीं था, आज तक। पर इस लॉकडाउन में यही आधुनिक तकनीक हमारा सहारा बन गई है।

पिछले चार महीने से मैं मुंबई में अपने घर में हूं। मैंने पहले खुद को संभालने का प्रयास किया। इस क्रम में सुबह उठना और अपनी नियमित दिनचर्या का पालन करना। ऑफिस का काम करना और साथ में नृत्य का रियाज करना जारी रखा। मैंने जीवन के इस यथार्थ को स्वीकार किया कि यह एक कठिन समय है और खुद को इस बदलाव को सहने के लायक बनाया। इस लॉकडाउन के दौरान मैंने अपने डांस की छोटी-छोटी रिकॉर्डिंग करनी शुरू कर दी थीं, फिर इसे देश-विदेश के अपने मित्रों के साथ व्हाट्सऐप, इंस्टाग्राम और फेसबुक पर भेजना शुरू किया। मेरे इस प्रयास की सभी मित्रों ने सराहना की, खासतौर पर जर्मनी, पेरू, इटली, फ्रांस, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया के मित्रों ने। क्योंकि, उन दिनों ये देश काफी दर्द से गुजर रहे थे। इसी के मद्देनजर मैंने अपने 'दृष्टिकोण फाउंडेशन' के कलाकारों के साथ मिलकर कोरियोग्राफी 'विदिन फ्रॉम विदिन' की है। यह शॉर्ट डांस फिल्म है। इसमें लॉकडाउन और कलाकारों की दुखद स्थिति को बयान किया गया है। इसे मैंने रॉ मैंगो और आर्ट मैटर के सहयोग से बनाया। इसे ऑनलाइन लांच किया जाएगा। इससे जो पैसे हमारे पास सहयोग राशि के तौर पर आएंगे, उन्हें कलाकारों की सहायता पर खर्च किया जाएगा।

> आधुनिक तकनीक का प्रयोग करके शौकिया तौर पर थोड़ा-बहुत नृत्य सीखा जा सकता है, लेकिन प्रोफेशनल डांसर बनने के लिए तो आपको गुरु के सान्निध्य में आना ही पड़ेगा।

मुझे तो लगता है कि सांसारिक परिवर्तन के साथ कला में बदलाव आता ही है। परिवर्तन तो कला का हिस्सा है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बदलाव तो आना ही है। हम कलाकार इससे अलग कैसे रह सकते हैं? कैसे सोच सकते हैं कि कुछ हुआ ही नहीं है? इस महामारी से सभी के तन-मन को एक धक्का लगा है। ऐसे दौर को हमारी पीढ़ी ने नहीं देखा था। हां, कभी स्पैनिश फ्लू या हैजा-जैसी बीमारियों की चर्चा भर सुनी थी, लेकिन परिस्थितियां जैसी भी हों हम कलाकारों को अपनी सृजनशीलता को जारी रखना है।

मुझे उम्मीद है कि हमारा देश भी जल्दी ही इस दुख-दर्द से उबर जाएगा, लेकिन हमें अपने स्वास्थ्य और सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाना होगा। हम कलाकारों को तालीम और रियाज का सिलसिला जारी रखना होगा। हम अपने दायित्वों को सकारात्मक सोच के साथ निभाएं, यह लॉकडाउन के बाद के समय की मांग है। हमें किसी-न-किसी माध्यम के जरिये लोगों से जुड़े रहना होगा। वैसे भी हर कोई घर की चारदीवारी में बंद है। आनेवाले समय में दो गज की दूरी बनाए रखना, मास्क पहनना और सफाई रखना, यह हमारा नागरिक दायित्व होगा। ऐसे में हर नागरिक का कर्तव्य है कि वह सकारात्मक सोच के साथ खुद प्रेरित रहे और दूसरों को प्रेरित करे। और कलाकारों को जब भी घबराहट हो अपना साज हाथ में लें या घुंघरुओं को बांधें और बजाना या नाचना शुरू कर दें। मैं तो इन दिनों यही कर रही हूं।

(लेखिका प्रसिद्ध कथक नृत्यांगना हैं)

घर
अब घर नहीं रहेगा!

सुकून पाने के लिए इनसान अपने घर जाता है। आज यही इनसान अपने-अपने घरों में है तो, लेकिन यहां सुकून नहीं एक अनजाना डर है। इस डर का विस्तार कोरोना वायरस से लेकर नौकरी जाने तक का है। भुखमरी, बेरोजगारी ने जैसे आदमी ही नहीं, पूरे घर के चैन को छीन लिया है। सब साथ-साथ रहते हैं, लेकिन डरे-सहमे से कुछ शिकायतों के साथ

सुमिता

ये उदास घर हैं, जिनके दरवाजे बंद हैं। ये सीलबंद सुरक्षित घर नहीं हैं। यहां बाहर की दुनिया रिसकर निरंतर हम तक आती रही है। जानकारियों का सैलाब दरवाजों से टकराता रहा है। टेलीविजन है, और स्मार्टफोन हर सदस्य के हाथ में है। क्या है, जो हमें पता नहीं है? ये खबरें हमें परेशान कर रही हैं, तकलीफ दे रही हैं, असहाय बना रही हैं। हमारे सच, हमारे स्वार्थ, हमारी सीमाएं सब सामने ला रही हैं। सड़क पर चलते लोग, भूख, हिंसा, मृत्यु, मानवीय गरिमा का अपमान, भूकंप, आत्महत्याएं—यानी क्या नहीं? आशंकाएं और डर हैं। कल हमारे साथ क्या हो, उसकी खबर नहीं है। बीमारी के डर हैं, एकबारगी मर जाने के डर, व्यवस्था की लापरवाहियों के डर। नौकरी के, मकान की किश्तों के, बच्चों की पढ़ाई आदि। अपनों के लिए डर, अपनों से डर। घर अब पहले से नहीं रहे कि जहां हम यकीन से बैठ जाएं कि कुछ दिन की बर्फबारी या लू की लपटों से बचकर हम यहां सुरक्षित हैं और एक दिन फिर बाहर निकल पड़ेंगे पिछले दिनों की तरह। जब मौसम ठीक होगा। ऐसा नहीं होने जा रहा। हम एक बदली हुई दुनिया में होंगे, जो घर के बाहर जितनी बदली है, उससे ज्यादा घर के भीतर बदल गई है।

यह अब का नया घर है। कोलाज है डर, आशंकाओं, नाराजगियों, गुस्से, लापरवाहियों, उपेक्षाओं, संवादहीनता और

अकेले पड़ते जाने का। अवसाद है, बेचैनी है, उदासी है, नाउम्मीदी है। यह भी तब जब परिवार लंबे समय तक साथ थे। कितने ही लोगों के लिए यह किसी उपहार की तरह रहा हो, मगर क्या आप खुश रह सकते हैं, जब बाहर की दुनिया दमघोंटू होती गई हो? दूसरी ओर उन परिवारों की संख्या बहुत ज्यादा है, जिन्होंने साथ रहने की तकलीफ झेली हैं।

कितना लंबा साथ मिला परिवारों को। ऐसा कब सोचा था कि इस तरह सब साथ होंगे, पर सभी के लिए यह खुशी साबित नहीं हुई। अनुशासन करते माता-पिता, घर के काम में उलझी महिलाएं (मदद करनेवाले सदस्य कम रहे), नौकरी रहेगी या नहीं, की आशंकाओं में डूबे पति-पत्नी, घर के वृद्ध लोगों की आवश्यकताएं, डॉक्टर तक न जा सकने की विवशता। घरेलू सामान के लिए दुकान तक जाकर लौटना, एक जंग होती है हर रोज। ठीक से लौटे या नहीं यह भी पता नहीं। कहीं वायरस तो साथ नहीं चला आया?

साथ रहने का कहर घर की महिलाओं पर बहुत ज्यादा टूटा है– जो घर के बाहर काम करती रही हैं उन पर भी और जो घर संभालती हैं उन पर भी।...एक बड़े समाचार-पत्र में वरिष्ठ पद पर काम कर रही एक मित्र का कहना था कि, 'मैं अपने को एक पत्रकार समझती थी, जो घर भी संभालती है। पिछले तीन महीनों में मैं घर का वह गुलाम बाशिंदा बन गई हूं, जो रसोई और घर-गृहस्थी के बीच थोड़ी-सी पत्रकार भी है।' वह घर से ही अपना काम देख रही है, मगर परिवार के लिए उसका यह काम किसी प्राथमिकता में नहीं आता। घर के उत्तरदायित्व हमेशा से महिलाओं के लिए इतने बेरहम रहे हैं, मगर पहले उन्हें हाउस हैल्पर का सहयोग था। अब जब उन लोगों के आने पर भी प्रतिबंध लगा, तो जैसे कह दिया गया कि अब महिलाएं 'अपना काम' संभालें। 'न' कहने के मौके एक बंद घर में कितने कम होते हैं; खासकर हमारे देश में, जहां अभी भी संयुक्त परिवारों की व्यवस्था ने सबकी भूमिकाएं तय की हुई हैं और उन्हें बदलना कठिन है।

ऐसे घर भी हैं, जहां सब सदस्यों ने काम बांटें हैं, किए भी हैं, पर कितने हैं ऐसे उदाहरण? अकसर 'वर्क फ्रॉम होम' वाले पुरुष दिनभर घर के 'दफ्तर' में रहे, बहुत-से अभी घर से ही काम करेंगे। उनके कमरे हैं, जहां वे व्यस्त हैं, घर से उनका मतलब अब भी उतना ही है, जितना पहले था, पर महिलाओं के लिए न अलग कमरे हैं और न उनका दफ्तर का काम प्राथमिकता। एक और मित्र ने कहा कि, 'लगता है अपने पति और बेटों को लेकर मैं एक हॉस्टल चला रही हूं, जहां दिनभर खाना बनता है और बर्तन साफ होते हैं।' जिन घरों

लॉकडाउन के सबक

- कितनी कम जरूरतें हैं हमारी। जीने के इतने सामान क्या वाकई जरूरी थे कि हमने अरबों साल से संजोए धरती के संसाधन कुछ सौ सालों में ही तबाह कर दिए?
- घर के भीतर भी एक आसमान है, जिसे हमें बचाए रखना है। वह दमघोंटू जगह न बन जाए। हमें बंद दरवाजों के घर नहीं चाहिएं, वहां बहती हवाएं हों।
- हमें अपने लोगों का साथ चाहिए, पर बहुत-सा स्पेस भी चाहिए।
- घर साझी जिम्मेदारी है।
- जीने के उत्सव के लिए ज्यादा कुछ नहीं चाहिए। नजर रिश्तों पर हो और अपने पर।
- हम सिर्फ अपने कोकून में सिमटकर नहीं सोच सकते कि सुरक्षित हैं। धरती पर कोई भी अस्तित्व सिर्फ अपने भरोसे नहीं टिका रह सकता। हमारे मामूली से अस्तित्व को पूरी कायनात का तालमेल चाहिए।
- कोरोना से डर ने मृत्यु पर सोचने का अवसर दिया है। हमें बहुत कम समय मिलता है इस ग्रह पर। किसलिए हम इतने खफा हैं, अपने आप से और अपने लोगों से।
- कुदरत ने हमें यह भी सिखाया कि हमें उसकी फिक्र करने की आवश्यकता नहीं है, हमारी नाकेबंदी करके कुछ ही दिन में उसने हवाओं पर अपना कब्जा कर लिया था। फिक्र तो हमें अपनी करनी है।
- एक बड़ा प्रश्नचिह्न जीने के तरीके पर लगा है। हमारे खुद के अस्तित्व पर भी। तो इस प्रश्न का सामना हमें करना ही होगा कि बदलें, तो कैसे और कैसे धरती पर अपनी हिस्सेदारी को सार्थक बनाएं?
- यह सबक भी कि जीने के लिए जुटाए अपने सामान पर हम एक नजर जरूर डालेंगे कि इसका मतलब क्या है? क्या वाकई चाहिए और क्या नहीं।

से पहले मुस्कुराते चेहरे निकला करते थे, वहां से आरोपों-प्रत्यारोपों की आवाजें आती हैं। मास्क के पीछे कितनी तकलीफें हैं!

ऐसे में घरेलू हिंसा के शिकार बच्चों और महिलाओं की स्थिति की कल्पना करना भी कठिन नहीं है। घरों में हिंसा झेल रहे लोगों के लिए घर पहले भी कोई सुरक्षित आसरा नहीं रहे हैं, मगर अब बाहर भागने के रास्ते फिलहाल बंद हैं।...बेहद खूबसूरत, स्नेहिल, आपसी समझ से भरे रिश्तों पर पिछले दिनों प्रश्नचिह्न लगते देखा है। 'परवाह कहां है किसी को'-जैसे वाक्य सुने हैं।

यह लॉकडाउन जैसे जिंदगी पर हुआ है। बेशक अब खत्म किया जा रहा है, पर वाकई क्या इससे निकलना आसान होगा? निकलेंगे भी तो किस तरह? क्या हम चार महीने पहलेवाले हम हैं? बाजार, रेस्तरां, सैर-सपाटे, छुट्टियों के पहाड़ और समंदर। कितनी जल्दी सब बदल जाता है? अब ये दूर का सपना होंगे। हमें अपने सपने बदलने होंगे। जीवन शैली भी।

कुछ बदलने के लिए सोचने का यह मौका कुदरत ने मनुष्य को क्रूरता के साथ दिया है। ठहरने-रुकने को तैयार ही कहां था वह? सभी एक दौड़ का हिस्सा बनते गए। हम क्या रुककर पिछले दिनों सोच पाए कि बाजार किस तरह हम पर हावी हुआ, अपने प्राकृतिक परिवेश की हमने कितनी उपेक्षा की? ज्यादा और ज्यादा की होड़ में नदियां, पहाड़, जंगल, वन्य जीवन, हाशिये पर पड़े लोग सब इस्तेमाल हो गए और हम खुद कहां हैं? बंद घरों में अपने ही लोगों के बीच अजनबी; अपने भी और दूसरों के लिए भी। हमें सांस चाहिए खुलकर, ताकि हम बह सकें और जी सकें, जिंदगी कोई चुनौती न बने उसके प्रवाह को समझना जरूरी है—मृत्यु जीवन के महत्त्व को समझाती है, पर यह जीवन खुदगर्जी नहीं साझेदारी है। यों महानगरों के मध्यम वर्ग के वे पड़ोसी जो एक-दूसरे से अनभिज्ञ जीवन जी रहे थे, लॉकडाउन में उन्हें आपसदारी बढ़ाते भी देखा गया है। तो ऐसा क्यों न सोचें कि पहले से बेहतर होंगे हम? आसपास की दुनिया को कुछ ज्यादा मुहब्बत से देख पाएंगे। वे जो मीलों पैदल चलते गए और तकलीफ की जो कहानियां लिखते गए, वे हमारी खिड़कियों

यह लॉकडाउन जैसे जिंदगी पर हुआ है। बेशक अब खत्म किया जा रहा है, पर वाकई क्या इससे निकलना आसान होगा? निकलेंगे भी तो किस तरह?

से हर रोज अंदर आती हैं।

सन् 2007 की एक फिल्म है, 'इन टू द वाइल्ड', जिसमें नायक दुनिया के जीने के तरीकों से असहमत होकर बहुत कम उम्र में सब कुछ छोड़कर दूर-दराज के निर्जन इलाके में रहने चला जाता है। प्रकृति के साथ तालमेल बैठाते हुए एक सहज-सा जीवन जीने की आकांक्षा। मगर अकेले जीवन की कठिनाइयां भी कम नहीं थीं। उसे अहसास होने लगता है कि खुशी अपनों के साथ रहने और प्यार व अनुभव उनके साथ बांटने में है। तो परिस्थितियां ऐसा ही कुछ आज हमें सिखाना चाह रही हैं। रिश्तों की अहमियत, हम शायद एक रूटीन जिंदगी की आदतों में भूलने लगे थे। हमेशा सब कुछ एक-सा नहीं रहता। किसी दिन सब बदल जाता है। बहुत जल्दी बदल जाता है और हम सोचते हैं कि जैसे सब यों ही चलता रहेगा। मौत इतने करीब हर रोज हो, तो घर बेखबर कैसे रह सकते हैं! जब हमें अगले दिन के बारे में कुछ पता न हो, एक-एक दिन करके जीने की स्थिति हो, तो अपनों के लिए कुछ ज्यादा समझ तो बना ही सकते हैं। उन लोगों के लिए जिंदगी आसान बना सकते हैं, जो हमारे आसपास हैं।

घर तब घर होता है, जब उसमें बाहर-भीतर के रास्ते खुले हों। हम इस इंतजार में हैं कि एक दिन जिंदगी फिर पहली-सी हो जाएगी। घर फिर हो जाएंगे—वापसी के ठिकाने। जहां बाहर की दुनिया में अपनी दिनभर की हिस्सेदारी के बाद हम घर लौटा करेंगे। शाम होंगी। कुछ चेहरे होंगे, कुछ संवाद, कुछ खबरें, कुछ सुकून, कुछ टकराव। रात के सन्नाटे और उत्सुक सुबहें। क्या वाकई?

(लेखिका वरिष्ठ पत्रकार हैं)

बदल जाएगा इनसानी व्यवहार

लॉकडाउन ने भले ही कितनों का नुकसान किया हो, लेकिन पर्यावरण की सेहत को सुधार दिया है। अब बड़ी बात यह है कि लॉकडाउन के बाद हम प्रकृति की इस सेहत को कितना संभाल पाते हैं। यही हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती होगी और जिम्मेदारी भी

प्रार्थना बोराह

कोविड-19 ने बेशक हमें यह एहसास दिलाया है कि इनसान होने के बावजूद हम किस कदर असुरक्षित हैं, लेकिन इसने प्रकृति और पारिस्थितिकी में हमारी रुचि फिर से जीवित भी की है। लॉकडाउन के दौरान, और उसके बाद भी, रोजाना हमने देखा कि सोशल मीडिया पोस्ट, रिसर्च-पेपर और पत्र-पत्रिकाओं के आलेख किस तरह प्रकृति के पुनरुत्थान, पारिस्थितिकी-संतुलन की जरूरत और हवा-पानी की गुणवत्ता में सुधार की बातें करते रहे। अब विमर्श का मुद्दा स्वाभाविक तौर पर कोविड-19 के बाद की दुनिया में बेहतर पर्यावरण के लिए किए जानेवाले प्रयास हैं। मगर सवाल यह भी है कि जो बहस अभी चल रही है, क्या आनेवाले दिनों में वह संवाद के स्तर तक ही सिमटकर रह जाएगी या फिर वाकई हम उन गलतियों को दुरुस्त करने की संजीदा कोशिश करेंगे, जो मौजूदा समस्याओं की वजहें बताई जा रही हैं?

देशभर में किए गए लॉकडाउन का एक सकारात्मक असर यह हुआ कि चंद दिनों के लिए ही सही, हमारी आबोहवा बहुत सुरक्षित और साफ हो गई। तालाबंदी में लोग घरों में सिमटे रहे, कल-कारखाने बंद हो गए और सड़कों पर गाड़ियों की संख्या नाममात्र की रह गई। नतीजतन, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम पड़ा, कार्बन का उत्सर्जन घटा और हवा तुलनात्मक रूप से कम प्रदूषित हुई। क्या यह सब क्षणिक रहेगा या कोविड-19 का सकारात्मक पक्ष भविष्य में भी कायम रखा जाएगा? कहना गलत नहीं होगा कि कोरोना वायरस संकट से पहले जलवायु आंदोलन स्पष्ट रूप से आगे बढ़ रहा था, और ग्रेटा थनबर्ग-जैसी युवा पर्यावरणविद् जलवायु

कोरोना-काल के बाद जरूरत

अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने फाइनेंशियल टाइम्स में लिखा है—'कोरोना वायरस के पहले से ही दुनिया में कम समस्या नही थी। दुनियाभर में विषमता चरम पर है। यह विषमता दुनिया के अलग-अलग देशों में भी है और देशों के भीतर भी है। विश्व के सबसे अमीर देश अमेरिका में लाखों लोग मेडिकल सुविधा से वंचित हैं। लोकतंत्र विरोधी राजनीति ब्राजील से बोलिविया और पोलैंड से हंगरी तक में मजबूत हुई है।' सेन एक जरूरी सवाल पूछते हैं कि क्या यह संभव है कि महामारी के साझे अनुभवों से पहले की समस्याओं के समाधान खोजने में मदद मिलेगी? जवाब में वे कहते हैं—'जाहिर है, अगर साथ मिलकर इस महामारी से लड़ने और बाद में संभलने की कोशिश हुई तो कई अच्छी चीजें हासिल हो सकती हैं। दूसरे विश्व युद्ध के बाद की दुनिया को मिसाल के तौर पर देखा जा सकता है। लोगों ने इस बात को महसूस किया था कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बिना शांतिप्रिय और स्थिर दुनिया नहीं हो सकती है।'

परिवर्तन के प्रभाव को कम करने संबंधी आंदोलन का नेतृत्व करने में खास भूमिका निभा रही थीं। पर्यावरणवादी और वैज्ञानिक समाज पर्यावरण सुरक्षा से जुड़ी अपनी चिंताओं और निष्कर्षों को नए-नए तर्कों के साथ साझा कर रहे थे। मगर कोरोना वायरस के बढ़ते संक्रमण के बाद चर्चा सिर्फ कोविड-19 पर आकर केंद्रित हो गई। सभी यही बातें करने लगे कि कोरोना से पहले दुनिया कैसी थी, और महामारी के बाद संसार कैसा बनेगा? अमेजन के जंगलों में लगी आग, ऑस्ट्रेलिया में दावानल, चक्रवाती तूफान और भूकंप सुर्खियों में नहीं रह गए, क्योंकि सारा विमर्श संक्रमित मरीजों की संख्या और मौत के आंकड़ों पर टिक गया। फिर भी, पारिस्थितिकी का सवाल महत्त्वपूर्ण है, ठीक उसी तरह, जिस तरह हमारे लिए यह जानना कि हम संक्रमण के मामले में शीर्ष से कितनी दूर हैं? बेशक हमारी चिंता यह होनी चाहिए कि संक्रमित होने के जोखिम को कम-से-कम रखते हुए किस तरह अपनी जरूरतें हम पूरी करेंगे, काम-धंधा कैसे करेंगे या बच्चों की देखभाल करते हुए 'वर्क फ्रॉम हॉम' कैसे हो सकेगा, लेकिन यह सच भी हमें कुबूल करना चाहिए कि पर्यावरण की स्वच्छता के मामले में कल हम जहां थे, आज भी वहीं हैं, क्योंकि हमने प्रकृति का संतुलन इस कदर बिगाड़ दिया है कि पारिस्थितिकी तंत्र में गड़बड़ी की वजह से हम पर खतरा बढ़ गया है।

कोरोना वायरस से रोजगार का चौतरफा नुकसान हुआ है। कई लोगों की आजीविका खतरे में आ गई है। भारत में प्रवासी श्रमिकों का मामला इसका ज्वलंत उदाहरण है। आर्थिक गतिविधियों के ठप पड़ जाने के बाद जब इन दिहाड़ी मजदूरों के पास दाने-पानी का कोई उपाय नहीं रहा, तो वे अपनी जन्मभूमि की ओर असहाय होकर लौटने को मजबूर हुए। संभव है कि अब तक जिस तरह के विकास का हमने सपना देखा है, वह हमें पूरा होता महसूस हुआ हो, लेकिन हमारी अर्थव्यवस्था अब ऐसी जरूर बननी चाहिए कि वह न तो लोगों का जीवन ले और न आबोहवा बिगाड़ने की वजह बने। संभव है, अब हम डी-कार्बनाइज्ड इकोनॉमी, यानी ऐसी आर्थिकी की ओर आगे बढ़ेंगे, जिसमें कार्बन का उत्सर्जन कम-से-कम होगा। इसकी जरूरत इसलिए भी है, क्योंकि यह कतई अंदाजा नहीं लगाया जा सकता कि लॉकडाउन के दौरान प्रदूषण के स्तर में आई कमी कितने दिनों तक बनी रहेगी? अनलॉक-1 के बाद उत्सर्जन में वृद्धि देखी भी गई है। लॉकडाउन में बेशक आबोहवा में कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड और कार्बन-मोनॉक्साइड-जैसे प्रदूषकों का स्तर गिरा, चूंकि इस दरम्यान ज्यादातर लोगों ने अपने-अपने घरों से काम किया, इसलिए देशभर में बिजली-जैसी ऊर्जा की खपत भी बढ़ी। इसे यूं समझिए कि पहले किसी एक ऑफिस में कुछ लोग एक साथ काम करते थे, लेकिन लॉकडाउन में सभी अपने-अपने घरों से काम निपटाने लगे। इससे ऊर्जा का बंटवारा उन सभी घरों में हुआ, इसलिए सड़कों पर गाड़ियों का बोझ कम होने की खुशी मनाने के साथ-साथ इस पर भी चिंतन होना चाहिए कि ऊर्जा खपत को हम किस तरह नियंत्रित करेंगे, क्योंकि आनेवाले दिनों में 'वर्क फ्रॉम होम' कामकाज की सामान्य संस्कृति बन जाएगी।

कोरोना वायरस से रोजगार का चौतरफा नुकसान हुआ है। कई लोगों की आजीविका खतरे में आ गई है, क्योंकि उनकी नौकरी छूट गई है।

कोई समाज जब आर्थिक संकट का सामना करता है, तो उसका पूरा ध्यान उससे बाहर निकलने पर होता है। इसके लिए सरकारें आर्थिक तंत्र में पूंजी का प्रवाह तेज करती हैं, ताकि लोगों की खपत बढ़े। इस बाबत बजट

में कई तरह के प्रोत्साहन की घोषणाएं भी की जाती हैं। मगर इसका स्याह पक्ष यह है कि इन तमाम उपायों में पर्यावरण की अनदेखी कर दी जाती है। इस बार भी यही प्रवृत्ति देखी जा रही है। सरकारें उद्योग जगत के लिए तमाम प्रोत्साहन की घोषणाएं तो कर रही हैं, लेकिन यह सुनिश्चित नहीं कर रहीं कि तमाम कल-कारखाने पर्यावरण नीति का सख्ती से पालन करें। यही कारण है कि जब हम कोविड-19 के बाद की दुनिया की बात करें, तो यह भी तय मानकर चलें कि आनेवाले दिनों में पर्यावरण की बेहतरी के लिए लड़नेवाले लोगों को पहले से कहीं अधिक मुखर होने की जरूरत होगी।

कोरोना वायरस ने यह संकेत भी दिया है कि हमारी जटिल वैल्यू-चेन (कंपनियों द्वारा उत्पादन, मार्केटिंग या बिक्री के बाद सेवा देने का वायदा करनेवाली शृंखला) किस कदर खतरनाक है और विकास-कार्यों की जो नीतियां हमने अपनाई हैं, उनमें पर्यावरण की अनदेखी से कितना खतरा पैदा हो सकता है। अगर कोरोना के बाद की दुनिया में हम पर्यावरण को सहेजना चाहते हैं, तो इसके संरक्षण के लिए होनेवाली पारंपरिक बहसों से बाहर कर दिए गए पारिस्थितिकीविदों, जैव-विविधता विशेषज्ञों को सामने आने और सतत विकास की नीतियों में शामिल होने की जरूरत है।

इसी तरह, पर्यावरण संबंधी नीतियां बनानेवाले रणनीतिकार तमाम कल-कारखानों को यह बताएं कि उन्हें अब ऐसी नीतियां बनानी ही होंगी, जिनसे महामारी की आशंका कम-से-कम हो। इस तरह की नीतियों में आपूर्ति शृंखला का नए सिरे से सृजन भी शामिल है। अधिकांश कंपनियों में हरित उत्पादन व्यवस्थाओं का अभाव है, इसीलिए इस बाबत पर्यावरण संरक्षणवादियों पर जिम्मेदारी कहीं ज्यादा बढ़ जाएगी। ठीक ऐसी ही जवाबदेही स्थानीय प्रशासन पर भी होगी। आर्थिक गतिविधियों पर कोविड-19 के पड़े प्रभाव का सीधा अर्थ यही है कि हमें अपने व्यवसाय और आपूर्ति शृंखला को नए सिरे से तैयार करना होगा, ताकि पर्यावरण कम-से-कम दूषित हो और कोरोना-जैसे वायरस का न्यूनतम प्रसार हो। इसके लिए हमें उन उपायों की खोज भी करनी होगी, जिनसे हरित प्रौद्योगिकियों व निर्माण में अधिकाधिक निवेश आए। ऐसे नवाचार को हकीकत बनाना होगा, जो पारिस्थितिकी संतुलन को बनाकर रखे। स्वाभाविक ही है कि हमें अपने मौजूदा आर्थिक संकेतकों में बदलाव करने होंगे। एक उपाय यह भी हो सकता है कि हम कचरे का उत्पादन कम करने और उसके अधिक-से-अधिक प्रबंधन की तरफ ध्यान दें। असमानताओं से जंग, आर्थिकी का नया रूप और जीडीपी केंद्रित अर्थव्यवस्था से तौबा भी इसके लिए जरूरी है। कोरोना वायरस ने हमें बताया है कि जीवन बनाए रखने के लिए बहुत असाधारण करने की दरकार नहीं है। अगर हमारी जीवनशैली पर्यावरण के अनुकूल है, तो हम लंबा जीवन आसानी से जी सकते हैं।

कोरोना वायरस ने हमारे व्यवहार को बदलने का भी काम किया है। रोजमर्रा के जीवन में हम कहीं अधिक संवेदनशील होने लगे हैं। लोग नीला आसमान देखना चाहते हैं, उन्हें स्वच्छ हवा और साफ पानी की अहमियत समझ में आने लगी है। अगर लोग यह समझ लेंगे कि धरती को नुकसान पहुंचाकर अच्छा जीवन कतई नहीं हासिल किया जा सकता, तो निश्चय ही सरकारी नीतियों और कारोबारी गतिविधियों में पर्यावरण को महत्त्व दिया जाने लगेगा। इसलिए कोरोना के बाद की दुनिया में हमारी आबोहवा कैसी होगी, यह पूरी तरह से हम पर निर्भर है। अगर हम अपनी जरूरतों के बारे में फिर से सोचेंगे, तो ऐसी दुनिया बना सकेंगे जिसमें कोरोना-जैसी महामारियों के लिए बमुश्किल जगह होगी और हमें घर की चारदीवारी में कैद नहीं होना होगा।

हमारी जीवनशैली पर्यावरण के अनुकूल है, तो हम लंबा जीवन आसानी से जी सकते हैं। कोरोना वायरस के बाद की दुनिया हमारे लिए ऐसी ही जीवनशैली रचने का मौका है।

(लेखिका 'क्लीन एयर एशिया' की इंडिया डायरेक्टर हैं)

बदला-बदला सा होगा मिजाज

साफ नदियां, साफ हवा, सुबह उठते ही पक्षियों की चहचहाहट–ये देन है लॉकडाउन की। प्रकृति के लिए तो यह कम-से-कम वरदान ही साबित हुआ है। देखनेवाली बात यह होगी कि प्रकृति का यह बदला-बदला मिजाज कब तक कायम रहता है

ज्ञानेंद्र रावत

लॉकडाउन के दौर में, वह चाहे नदी, वायु, आकाश, वातावरण हो या वनस्पति, सबकी प्रकृति में काफी बदलाव आया। पक्षियों की स्वच्छ वातावरण में चहचहाने की आवाज सुनाई दी। पेड़-पौधों ने प्रदूषण और धूल-मिट्टी की परतों से मुक्त हो चैन की सांस ली। पर्वतों की चोटियां सैकड़ों मील दूर से दिखने लगीं। नदियों का जल और आसमान प्रदूषणमुक्त साफ दिखा। सड़कों ने वाहनों के दबाव से राहत महसूस की। ऐसा लगा कि वायु प्रदूषण कभी था ही नहीं। वन्यजीव सड़कों, महानगरों की बस्तियों में स्वच्छंद घूमते देखे गए। यह बदलाव प्रदूषण के स्तर में लॉकडाउन से पहले के मुकाबले वाहन और औद्योगिक इकाइयों के बंद होने से उत्सर्जन में कमी का परिणाम था। पर्यावरण के लिए यह शुभ ही शुभ था।

लॉकडाउन के बाद ऐसे वातावरण की आशा-आकांक्षा ने यह सोचने पर विवश किया है कि आवश्यक सेवाओं को छोड़कर वैश्विक स्तर पर महीने में कुछ दिन सारी गतिविधियों

कादम्बिनी

आकल्पं कवि नूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

मासिक प्रकाशन ■ जुलाई, 2020, वर्ष 60, अंक 09

प्रधान संपादक : शशि शेखर
सहयोगी संपादक : राजीव कटारा
सहायक संपादक : अरुण कुमार जैमिनि
मुख्य कॉपी संपादक : संत समीर
वरिष्ठ कॉपी संपादक : प्रदीप कुमार

कार्यकारी संपादक (डिजाइन) : राजेश जैतली
डिजाइन : मनोज अग्रवाल
अनिल सर्राफ
कवर डिजाइन : प्रदीप वशिष्ठ

मुद्रक तथा प्रकाशक राजीव बेओतरा द्वारा हिन्दुस्तान मीडिया वेन्चर्स लिमिटेड (एच एम वी एल) के पक्ष में एच टी मीडिया लिमिटेड प्रेस, प्लॉट नं.-8, उद्योग विहार, ग्रेटर नोएडा, जिला : गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.) से मुद्रित एवं 18-20, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित।

आर. एन. आई. नं. 4983/60

संपादकीय पता

कादम्बिनी, हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड, आकृति बिल्डिंग, फर्स्ट फ्लोर, सी-164, सेक्टर-63, नोएडा, जिला : गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश-201301
फोन : 0120-4895207, 212
0120-4970845
ईमेल :
commdesk@hindustantimes.com
कादम्बिनी अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है
www.livehindustan.com **पर क्लिक करें।**

...और बदलेगी दुनिया

'कोरोना' ने हमारे जीवन को एकाएक बदल दिया है। पर्यावरण से लेकर इनसान के भीतर की दुनिया तक। घर, अब सिर्फ घर नहीं रहे। वे ऑफिस बनते जा रहे हैं। समाज में जीनेवाले, अब अपने भीतर सिमटने लगे हैं। मिलते ही प्यार से गले लगना और एक-दूसरे को चूमना अब मन में डर पैदा करने लगा है। शिक्षा के मंदिर से लेकर बाजार की भीड़ तक अब 'ऑनलाइन' होते जा रहे हैं। इस बार की आवरण कथा

10. बदली-बदली-सी होगी यह दुनिया -मधु कांकरिया
14. नए अवसर, नई चुनौती अनामिका
17. ...जरा संभलकर बदलना होगा -राजेंद्र घोड़पकर
20. एक अलग कल की आहट -पं. मधुप मुद्गल
22. ...कल फिर बदलेगी दुनिया -देवेंद्र मेवाड़ी
25. वही नहीं रहेंगे देश-दुनिया के रिश्ते -शशांक
28. नए तेवर और मिजाज का बाजार -कृष्णस्वरूप आनंदी
31. कला का हिस्सा है बदलाव -अदिति मंगलदास
33. घर, अब घर नहीं रहेगा! -सुमिता
36. बदल जाएगा इनसानी व्यवहार -प्रार्थना बोराह
39. बदला-बदला-सा होगा मिजाज -ज्ञानेंद्र रावत
42. नए तौर-तरीकों की सिनेमाई दुनिया -मुजफ्फर अली
44. कुछ बदले-बदले-से होंगे सलीके -इंदिरा दांगी
47. @न्यूजिंदगी डॉट कॉम -पीयूष पांडे
50. ...कल और दौर आएगा -श्याम रावत
52. ऑफिस, आखिर कितना ऑफिस -मुकेश सिंह
55. ये वही शूटिंग तो नहीं... -सुनील आनंद

लेख

56. अपने गीतों की तरह सहज थे–योगेश -दीप भट्ट
58. मृत्यु के निकट जीवन की स्वीकृति -टॉम ली

उपन्यास-अंश/कहानी

61. मेरी देहरी में ही होनी थी यह ख्वारी हाय-हाय! -अजय मिश्र
64. सेकंड चांस -क्षमा शर्मा

कविताएं

68. कविताएं - भारतभूषण अग्रवाल/सुहैब अहमद फारुकी/अनामिका अनु

हर बार

अतीत के पन्नों से-5, मंच-6, किताबें-70, पहला कदम-73, मतांतर-74, व्यंग्य-76, हंसी-दिल्लगी-77, एलोपैथी-78, आयुर्वेद-79, माइंड गेम-80, भविष्य-81, शब्द-82.

संपर्क करें

विज्ञापन के लिए :
मयंक खंतवाल
मोबाइल : 09999419333
email :
mayank.khantwal@hindustantimes.com

सदस्यता शुल्क –

वार्षिक - 280 रुपये,
द्विवार्षिक - 520 रुपये।

विदेशों में –

वार्षिक - 1240 रुपये।
द्विवार्षिक - 2440 रुपये।

'कादम्बिनी क्लब' के सदस्यों के लिए -235 रुपये प्रति सदस्य (वार्षिक)।

शुल्क केवल **चैक, बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर** से भेजें। ड्राफ्ट 'हिंदुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड' के नाम से दिल्ली में देय हो। शुल्क भेजने का पता : सब्सक्रिप्शन सेल, कादम्बिनी, हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड, पैसिफिक बिजनेस पार्क, फोर्थ फ्लोर (ए-401), साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, जिला: गाजियाबाद (उ.प्र.) पिन: 201010
फोन : 0120–6678788

को बंद क्यों न कर दिया जाय? यहां गौरतलब है कि जो देश पेरिस समझौते को लागू करने में बाधा बने हुए हैं, वे क्योंकर इस पर राजी होंगे? इसके लिए हमें जीवनशैली में बदलाव लाना होगा। सरकार को पर्यावरण की कीमत पर विकास की अवधारणा को त्यागना होगा। यह विकास के ढांचे में बदलाव लाए बिना असंभव है। दरअसल आज का विकास हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि पूंजी के एक नए चरण का लक्षण है। पहले विकास के मायने बिजली, पानी, सड़क आदि होते थे, लेकिन आज नई-नई जरूरतें पैदा करने का नाम विकास है। दूसरे शब्दों में इसे मुनाफे के लिए विकास कह सकते हैं। इसके चलते धरती पर बोझ बढ़ रहा है।

आज हमारा देश दो मोर्चों पर लड़ रहा है। एक, आतंकवाद के खिलाफ जहां रोजाना सेना के अधिकारी और जवान देश की रक्षा की खातिर स्वयं को बलिदान कर रहे हैं। दूसरे, कोरोना नामक वैश्विक महामारी के खिलाफ; जिसके चलते 13 जुलाई तक देश में कोरोना से हुई मौतों का सरकारी आंकड़ा 8,884 और संक्रमितों का 3,08,916 को पार कर चुका है। संक्रमितों और मौतों के मामले में अब हमारा देश अमेरिका, ब्राजील और रूस के बाद चौथे पायदान पर है। इसमें तकरीब 10 हजार रोजाना की बढ़ोतरी महामारी की भयावहता का संकेत है। अब तो कोरोना से जूझ रहे डॉक्टर, नर्स, स्वास्थ्यकर्मी, प्रशासनिक-पुलिस अधिकारी, पुलिसकर्मी, जवान, सभी तेजी से संक्रमण के घेरे में आ रहे हैं। डब्ल्यूएचओ पहले ही कह चुका है कि इससे छुटकारा सितंबर महीने तक संभव नहीं है। दरअसल इस महामारी ने अनेकानेक बुनियादी सवालों को हमारे सामने खड़ा कर दिया है। आजीविका के मौजूदा मॉडल से जुड़े बुनियादी सवाल तो हैं ही, वहीं पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान को लेकर न केवल दिशाबोध के संकेत, बल्कि उनके समाधान की दिशा में मार्गदर्शन भी किया है। इस अवधि में पर्यावरण के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व बदलाव हुए हैं, उससे स्पष्ट है कि लॉकडाउन के प्रभावों को हमें सीमित दायरे में रखकर कदापि नहीं देखना चाहिए। उन्हें बहुसंख्यक समाज के स्थायी हित, सामाजिक सुरक्षा-समरसता और पर्यावरण की दृष्टि से परखना और समग्र अध्ययन के द्वारा उन सवालों के उत्तर खोजे जाने चाहिए।

गौरतलब है संयुक्त राष्ट्र और शोध करनेवाले समूह की चेतावनी के अनुसार दुनिया के प्रमुख जीवाश्म ईंधन उत्पादकों ने अगले दस वर्षों में अत्यधिक कोयला, तेल और गैस निकालने का लक्ष्य रखा है। इससे वैश्विक पर्यावरणीय लक्ष्य पीछे छूट जाएगा। रिपोर्ट में चीन-अमेरिका सहित दस देशों की योजनाओं की समीक्षा के बाद कहा गया है कि 2030 तक वैश्विक ईंधन उत्पादन पेरिस समझौते के लक्ष्य 1. 5 से 2 डिग्री सेल्सियस के भीतर सीमित करने के बजाय 50 से 120 फीसदी अधिक होगा। समझौते से इतर 2030 तक दुनिया में कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन 30 गीगाटन होगा, जो तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस तक बनाए रखने में नाकाम होगा। कारण चार सबसे बड़े उत्सर्जक देश—चीन, अमेरिका, यूरोपीय संघ और भारत ने बीते दशक में दुनिया के कुल ग्रीनहाउस उत्सर्जन में 56 फीसदी का योगदान दिया है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के कार्यकारी निदेशक इंगर एंडरसन की मानें, तो वर्तमान में दुनिया में ऊर्जा की जरूरत पूरी करने के लिए कोयला, तेल और

महात्मा गांधी ने कहा था...

कोरोना काल में गांधी विचारधारा और प्रासंगिक होती दिख रही है। महात्मा गांधी ने कहा था कि—'धरती के पास मानव की जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी कुछ है, लेकिन उसके लोभ को पूरा करने के लिए कुछ भी नहीं।' उन्होंने सन् 1928 में उत्पादन और खपत के पश्चिमी तौर-तरीकों के कारण वैश्विक स्तर पर असंतुलन की चेतावनी के साथ यह टिप्पणी भी की कि—'ईश्वर नहीं चाहता कि भारत कभी पश्चिम की तरह औद्योगीकरण को अपनाए।' वे जानते थे कि आजाद होने पर भारत की गरीबी को खत्म करने और नागरिकों के सम्मानजनक जीवनयापन के लिए विकास करना होगा। यहां पश्चिम की तुलना में आबादी का घनत्व अधिक है और नियंत्रण-शोषण के लिए उपनिवेश भी नहीं हैं, इसलिए अपने प्राकृतिक संसाधनों के प्रति जिम्मेदारी दिखानी होगी। पर्यावरण को कम-से-कम नुकसान पहुंचाना होगा; जिस पर हर तरह का जीवन, विशेष रूप से मानव जीवन निर्भर है। दुख इस बात का है कि आजाद भारत की सरकारों ने गांधी विचार को पूरी तरह बिसार दिया। एक वायरस के कहर ने पर्यावरण, रोजगार, स्वदेशी-स्वावलंबन के सारे मुद्दों पर सोचने पर बाध्य कर दिया है।

गैस के ज्यादा इस्तेमाल से होनेवाले उत्सर्जन से जलवायु लक्ष्यों को किसी भी कीमत पर पूरा नहीं किया जा सकता। इस बारे में संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंतोनियो गुतारेस का कहना सही है कि– ''ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्य अब भी पहुंच से बाहर हैं। यदि वैश्विक प्रयास तापमान को डेढ़ डिग्री तक सीमित करने में कामयाब रहे, तो भी 96 करोड़ दस लाख लोगों के लिए यह खतरा बरकरार रहेगा।''

लॉकडाउन के दौर में बहुतेरे छोटे-बड़े कारखाने, कंपनियां व कई कुटीर उद्योग बंद हुए, जिसके परिणामस्वरूप करोड़ों कुशल, अर्ध-कुशल, कामगार व दिहाड़ी मजदूर बेरोजगार हुए। नई नौकरी और नौकरी की गारंटी की बात तो दूर, कंपनियों ने आधी तनख्वाह देना शुरू किया, कुछ ने वह भी बंद कर दी, तो अधिकांश ने छंटनी ही कर दी। न मालिकों ने उन्हें कुछ दिया, न ठेकेदारों ने। रही-सही कसर महंगाई ने पूरी कर दी। आटा-दाल-नमक ही नहीं, पशुओं का चारा, खली, चोकर आदि की भी कीमतें आसमान पर हैं। सरकारी राहत भी उन तक सही ढंग से नहीं पहुंच रही। करोड़ों की तादाद में मजदूर रोजी-रोटी की अपर्याप्तता की आशंका में कानून की पाबंदियों को दरकिनार कर बीवी, दुधमुंहे बच्चों के साथ सैकड़ों किलोमीटर की यात्रा के लिए नंगे पैर पलायन को विवश हुए। इस रिवर्स पलायन ने महानगरीय रोजगार से मोहभंग के साथ देश की आत्मा को झकझोर दिया। लगता है ग्रामीण नौजवान का वह सपना खंड-खंड होता नजर आ रहा है जब वह गांव से रोजगार के कम होते अवसरों के कारण महानगरों में रोजगार में सामाजिक समरसता और स्थायित्व की तलाश में गया था। वह अब समझ चुका है कि नगरीय रोजगार में मजदूर और नियोक्ता का संबंध व्यावसायिक ही होता है।

जिसने संकटकाल में भी भारतीय समाज को बिखरने से बचाने और एकजुट रखने का ऐतिहासिक काम किया था, वह आज उसमें अपनी सुरक्षा तलाश रहा है।

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो अब अपनी क्षमता खो चुकी है और जिसने संकटकाल में भी भारतीय समाज को बिखरने से बचाने और एकजुट रखने का ऐतिहासिक काम किया था, वह आज उसमें अपनी सुरक्षा तलाश रहा है। इसके कारण ही वह कह रहा है कि यदि गांव में उसे रोजगार मिले, तो वह कभी बाहर नहीं जाएगा, लेकिन यह आसान नहीं है। कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के पुराने मॉडल को स्वीकार करना उतना सरल नहीं है। आज जहां प्रति व्यक्ति खेती योग्य जमीन की उपलब्धता घटी, बाजार के नजरिये में व्यापक स्तर पर बदलाव आया, खेती का पुराना मॉडल बदला, वहीं आज न उतना खरा लाभ देनेवाला नजरिया है और न बाजार। खेती के संकट से सभी वाकिफ हैं जो आबादी के संकट से और गहरा गया है। वहां भी कुछ को ही 'मनरेगा' में रोजगार मिला है। बाकी भूखे-प्यासे भगवान भरोसे हैं। हालत यह है कि कुछ ने तंगहाली से दुखी होकर खुदकुशी कर ली, कुछ तनाव में, तो कुछ अवसाद में हैं, और हजारों पढ़े-लिखे नौजवान सब्जी बेच रहे हैं। कुछ इस पशोपेश में हैं कि करें तो करें क्या? अब सवाल यह है कि क्या यह पलायन नगरीय रोजगार की चकाचौंध को फिर पटरी पर ला सकेगा।

इस उथल-पुथल के हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़े विपरीत प्रभाव की भरपाई अगले दशकों में होना मुश्किल है। उस दशा में जबकि देश के 94 फीसदी लोग असंगठित क्षेत्र पर निर्भर हैं। मौजूदा हालात ने इस क्षेत्र की समस्याओं को भयावह स्तर तक बढ़ाने का काम किया है। नतीजतन लाखों गरीब मजदूरों के भूखों मरने की नौबत आ गई है। देश पहले से ही नोटबंदी के कुचक्र से टूट चुका है। इसका परिणाम 50 लाख से ज्यादा बेरोजगारों के रूप में सामने आया। 99.94 फीसदी पुराने नोट रिजर्व बैंक में जमा हुए। किसानों की फसल कौड़ियों के दाम बिकी। न भ्रष्टाचार खत्म हुआ, न काला धन आया। इतना अवश्य हुआ कि देश की अर्थव्यवस्था को पलीता जरूर लगा, जो थम नहीं रहा। जीएसटी के चलते व्यापारी त्राहि-त्राहि कर रहा है। 2 करोड़ नए रोजगार देने का सवाल अनसुलझा है, जबकि पहले ही देश में 23 फीसदी रिकॉर्ड बेरोजगारी है। कोरोना काल में इसमें हुई बढ़ोतरी ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं। जीडीपी रिकॉर्ड 4.5 निम्न स्तर पर पहुंच गई है। उन हालात में जबकि वास्तविक विकास दर निचले स्तर पर है। बहरहाल बदहाल स्वास्थ्य व्यवस्था के बावजूद कोरोना के खात्मे हेतु देश में कोशिशें जारी हैं। इसमें समय लगेगा, लेकिन इन सवालों पर समाज ही नहीं, आगामी पीढ़ियों को गुमराह होने से बचाने हेतु देश के योजनाकारों और नीति नियंताओं को गंभीरता से विमर्श कर लक्ष्मण-रेखा खींचनी होगी, तभी कुछ सार्थक बदलाव की उम्मीद की जा सकती है।

(लेखक चर्चित पर्यावरणविद् हैं)

नए तौर-तरीकों की सिनेमाई दुनिया

कोरोना से सबसे ज्यादा नुकसान थिएटर और सिनेमा को हुआ है। भीड़भाड़ के बिना इस माध्यम की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। बदले हालात में उसे भी बदलना है। शुरुआत हो चुकी है। अब नए तौर-तरीकों और तेवर वाला होगा सिनेमा

कोरोना काल में सबसे बड़ी बात यह हुई है कि आपको भीड़ से भागना है। सोशल डिस्टेंसिंग जरूरी हो गई है।

मुजफ्फर अली

जनता को अब सोशल डिस्टेंसिंग के भीतर ही रहना है। एहतियात के लिए उसे भीड़ से दूर रहना है। भीड़ में फंसे लोगों से दूर रहना है, तो कोरोना काल में पहली कुल्हाड़ी तो थिएटर पर पड़ी है। आपको थिएटर जाना है, वहां दर्शकों की भीड़ होगी, तो थिएटर हो नहीं सकता। थिएटर की बुनियादी शर्त है कि वहां भीड़ होगी। उसे भीड़ चाहिए। फिल्म बनाने के लिए भी भीड़ चाहिए, तो कोरोना की दो कुल्हाड़ियां रंगमंच और सिनेमा पर पड़ी हैं। अब फिल्मकारों और रंगमंच के उस्तादों को इन दोनों कुल्हाड़ियों के बीच ही अपने दांवपेंच दिखाने हैं। इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। फिलहाल तो यही स्थिति है। अभी यह लंबे समय तक चलेगी।

मैं समझता हूं कि अब कंप्यूटर-ग्राफिक का काम बढ़ जाएगा। इससे प्रॉडक्शन के डिजाइन में फर्क आएगा। सिनेमा का नया नक्शा बनेगा। लिखनेवालों के लिए चुनौतियां बढ़ेंगी। फिल्म की पटकथा और कहानी लिखनेवाले लोगों को ऐसा लिखना होगा जिसमें गहराई

सिनेमा नए अंदाज में

कोरोना वायरस संक्रमण जैसे हालात जब आते हैं तो इससे निपटने के लिए नए-नए तरीके भी आते हैं। और कई बार पुराने नुस्खे भी काम आ जाते हैं। मसलन, अमरीका में जब लॉकडाउन में मूवी हॉल बंद हो गए, तो ड्राइव-इन सिनेमाहॉल का चलन फिर से शुरू हो गया। भारत में दशकों से इस तरह खुले में बैठकर सिनेमा देखने का चलन रहा है। अमेरिका में लोग फिजिकल डिस्टेंसिंग का ध्यान रखते हुए अपनी-अपनी कार में आकर बैठते हैं और खुले मैदान में फिल्म दिखाई जाती है। हाल के दिनों में यह चलन खूब बढ़ा है। कोरोना वायरस के कारण म्यूजिक कॉन्सर्ट करनेवाले कलाकार भी खासे प्रभावित हुए हैं। कई कॉन्सर्ट कैंसल हो चुके हैं और दोबारा कब होंगे, यह भी पता नहीं है।
सिनेमा और संगीत के अलावा लोग मनोरंजन के लिए थीम पार्क में जाते हैं। कोरोना संक्रमण के कारण तीन महीने बंद रहने के बाद मई में शंघाई डिज्नीलैंड पार्क मई में दोबारा खुला। वहां सिर्फ 24000 लोगों को आने दिया गया। कुछ महीनों बाद भारत में भी शायद थीम पार्क लोगों के लिए खुल जाएं, लेकिन चीन की तरह यहां भी फिजिकल डिस्टेंसिंग का ध्यान रखना होगा।

रखिए नई दुनिया आसानी से नहीं बनती। अभी सिनेमा की दुनिया के हजारों लोग नई परिस्थिति और नए परिवेश में काम से बाहर हो जाएंगे। जब भी नई तकनीक और नई शैली आती है, तो पुरानी तकनीक का पतन होता है। पुरानी तकनीक के साथ काम करनेवाले लोग बाहर हो जाते हैं।

मौजूदा दौर में तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं। कुछ तो तकनीक को बढ़ावा देने के लिए आ रहे हैं। अब परिवर्तन हालात की मजबूरी से आएगा। परिवर्तन तो परिवर्तन है। हर परिवर्तन चीजों को अपनी लपेट में लेता है। वक्त के साथ हर चीज को यूजर फ्रेंडली बनना पड़ता है। पहले लोग साथ में फिल्म देखते थे। अब तो जब चाहें, जैसे चाहें, जहां चाहें फिल्म देख सकते हैं। अब हीरो-हीरोइन मास्क पहनकर तो शूटिंग नहीं करेंगे। शूटिंग के वक्त पांच मिनट का शॉट है, तो मास्क उतार लेंगे। पूरी यूनिट सेनेटाइज होगी। हर आदमी चेक होने के बाद ही शूटिंग स्थल पर पहुंचेगा। हीरो-हीरोइन मास्क नहीं लगाएंगे, पर यूनिट के और लोगों को तो मास्क लगाना पड़ेगा।

मैं हमेशा से आशावादी रहा हूं। हर दिन नई सुबह देखने की आदत है मुझे, तो मुझे लगता है कि आनेवाले दिनों में क्रिएटिव कम्यून बनेगा। एक खयाल और एक मिजाज के लोग एक जगह रहेंगे। उनकी अपनी दुनिया होगी। चीजों में बदलाव आएगा। हर बदलाव अपनी एक नई तहजीब लेकर आता है। काम की नई शैली लेकर आता है। इनसानियत ठहर तो नहीं जाती इस बदलाव के कारण। पीढ़ियां नए तौर-तरीके लेकर आएंगी और फिर से नया मौसम होगा।

(लेखक प्रसिद्ध फिल्मकार हैं)

हो। इनसान की फीलिंग की गहराई में जाना होगा। शूटिंग में कम-से-कम भीड़ होगी। अभी तक क्या होता है कि फिल्म की यूनिट 200-300 लोगों की होती है। फिल्म प्रदर्शन के तौर-तरीके बदल जाएंगे। सिनेमा के लिए ओटीपी चैनलों को बढ़ावा मिलेगा। वैसे भी दर्शक अपने मोबाइल फोन पर ही फिल्म देख लेते हैं। सिनेमा की फोन और टीवी स्क्रीन पर निर्भरता बढ़ेगी।

इसके अंदर ही सारा खेल होगा। इसे करने के लिए एक नई दुनिया बनेगी। एक बात याद

मौजूदा दौर में तकनीकी परिवर्तन हो रहे हैं। कुछ तो तकनीक को बढ़ावा देने के लिए आ रहे हैं। अब परिवर्तन हालात की मजबूरी से आएगा।

बहुत दिनों बाद मिलने पर देखते ही एक-दूसरे के गले लग जाने और चूमने के दिन अब लद गए हैं। कोरोना ने प्यार के इजहार से लेकर शिष्टाचार के तरीके तक बदल दिए हैं। मन की भावनाएं तो पहले-जैसी होंगी, लेकिन सुरक्षित दूरी के साथ

कुछ बदले–बदले से होंगे सलीके

बच्चों को चूम-चूमकर आत्मीयता दिखाते बड़े। गर्मजोशी से देर तक हाथ मिलाते लोग या डिस्कोथेक में नाचती युवा भीड़– अब इन दृश्यों में कुछ फेरबदल करके देखते हैं। आशीर्वाद में हथेली सिर पर रखते बड़े, नमस्कार की मुद्रा में मुस्कुराते लोग या डिस्कोथेक के बजाय अपने आत्मीयों के साथ समय बिताते युवा।....जिंदगी इतने बारीक और बड़े स्तर पर बदल जानेवाली है जैसे मोपांसा या चेखव की कोई कहानी।

इंदिरा दांगी

जो कुछ हमारे आउटर सेल्फ के साथ होता है, उसका हमारे इनर सेल्फ पर एक गहरा असर पड़ता है; जीवन बदलना इसी को कहते हैं। कोरोना काल के बाद जिंदगी क्या होगी, कैसी होगी–यह आनेवाला नहीं, बल्कि आ चुका वक्त है एक तरह से। चलिए, एक राउंड लगाकर आते हैं इस नई दुनियादारी का जो पहले से अलग, नई और बेहतर भी जान पड़ती है।

सबसे पहले घर, जो विश्व होता है गृहिणी का। अब इस विश्व की स्वामिनी की सोच बदल गई है, तो जाहिर है पूरा परिवार बदल रहा है। जूते घर के बाहर ही उतारने का एक सख्त नियम हो गया है। गोकि हिंदुस्तानी तहजीब में जूते दहलीज के बाहर ही उतारने का कायदा रहा है जो कि हम भूल चले थे। कोई बात नहीं, हमारा कल्चर हमें कोरोना ने फिर याद दिला दिया है। जूते बाहर उतारने का ही नहीं, बल्कि हाथ जोड़कर नमस्कार की मुद्रा से मेहमानों का स्वागत करने

का। जैसे बाग-बगीचों में तख्ती लगी रहती है–'फूल तोड़ना मना है।' उसी तरह की कुछ एक अदृश्य तख्ती अब हमारे जहन पर लग जानेवाली है–'हाथ मिलाना मना है।' अब जूते उतारकर घर के अंदर तो आ गए। अरे हां, दरवाजे पर ही हाथ सेनिटाइज करना नहीं भूलना है और खरीदकर लाई हुई चीजों को भी तो बैक्टीरियामुक्त करना है। कुछ इन फल-सब्जियों, सामग्री को गर्म पानी से धोएंगे, तो कुछ धूप में रखना पसंद करेंगे। धूप मुफ्त का एंटीसेप्टिक है। गृहिणियां जो हाथ धोना भूल गई थीं, अब रह-रहकर हाथ धो रही हैं और रसोई में नई आई इस अतिरिक्त स्वच्छता के कारण कोरोना ही नहीं, दूसरी कई बीमारियों से भी हम सुरक्षित होंगे। बाहर से आकर नहाना एक अतिरिक्त सुरक्षा देगा, स्वच्छता तो देगा ही खैर। 'मृजया रक्ष्यते रूपम्' अर्थात् स्वच्छता से रूप की रक्षा होती है। यों, लोग अब पहले से अधिक सुंदर हो जानेवाले हैं।

मास्क, क्योंकि जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा होगा, यह जरूरतों के हिसाब से जीवन में ढल जानेवाला है। मसलन स्कूलों में यूनीफॉर्म के रंग का मास्क होगा और तब पब्लिक स्कूलोंवाले अभिभावकों के पास वर्तमान कॉपी, किताब, स्कूल बैग, स्वेटर, टोपी के साथ मास्क को लेकर भी भारी असंतोष रहा करेगा कि स्कूलवाले बीस रुपये का मास्क दो सौ रुपये में देते हैं और वो भी उनकी निर्धारित दुकानों से ही खरीदना पड़ता है! मास्क भी स्टेटस सिंबल बन जानेवाला है; जैसा मास्क महरी ने लगा रखा है, अगर गलती से वैसा मालकिन ने लगा लिया, तो ये तो भइया तौहीन हो गई। साड़ियों के साथ अब मैचिंग ब्लाउज की तरह मैचिंग मास्क मिलने लगेंगे। दुल्हन की शॉपिंग में लड़केवाले अपने स्टेटस के हिसाब से मास्क खरीदेंगे और अब शायद ऐसी भी बातें महिलाओं की किटी पार्टी में सुनने को मिलें, ''अरे फलां ने तो एक लाख का मास्क चढ़ाया बेटे की शादी में। खास तौर पर हीरे जड़वाए थे। मैं भी इसी डिजाइन का मास्क दूंगी अपनी बेटी को शादी में। हम किसी से कम थोड़े ही हैं।''

''मम्मी! मम्मी! चाचू की शादी में मुझे पांच हजारवाला मास्क ही पहनना है। चीनू तो अपनी बुआ की शादी में आठ हजार का मास्क पहननेवाली है।''

शादी-समारोह में ये भी हो सकता है कि लड़केवाले उम्मीद करने लगें कि लड़कीवाले दहेज में मास्क भी देंगे–चंदेरी, माहेश्वरी, मेखला चादर, कोसा, बनारसी, कांजीवरम–कहिए कि किस वैरायिटी में नहीं मिलनेवाले हैं मास्क। 'जाकी रही भावना जैसी, मास्क मुख देखी तिन तैसी' (तुलसीदासजी से क्षमायाचना सहित) और विवाह-समारोहों में ये तो जरूर ही होनेवाला है कि वधू पक्षवालों के मास्क पर 'लड़कीवाले' और वर पक्षवालों के मास्क पर 'लड़केवाले' लिखा होगा। और कहीं जो कोई वधू पक्ष का व्यक्ति यदि गलती से 'लड़केवाले' लिखा मास्क लगा बैठा, तो यह बहुत

परिवार से रिश्ते सुधरेंगे

कोरोना काल के चलते बदल रहे इस दौर में घर में अधिक रहने से परिवार से रिश्ते सुधरेंगे और वे भाभीजी, जो हमेशा शिकायत करती थीं कि तुम्हारे भैया कभी आइसक्रीम खिलाने तक नहीं ले जाते; वे अब अपना मनपसंद टीवी सीरियल देखते हुए अपने पतिदेव के हाथों की बनी गर्मागर्म चाय का लुत्फ ले रही होंगी। पापा और भैया रसोई में ज्यादा जाएंगे, तो कुछ आदतें मम्मी और दीदियों-भाभियों की भी बदलेंगी। स्कूल वैन में ठूंस-ठूंसकर भरे बच्चों की अखबारों में छपी तस्वीरें अब पुराने समय की बात होगी। निजी वाहनों से बच्चों को स्कूल छोड़ने की आवश्यकता अधिक महसूस होगी समाज में, तो अब ज्यादा माताएं या भाभियां स्कूल बैग और वाटर बोतल टांगे बच्चों को आगे खड़ा किए अपने स्कूटर फरारी की तरह सड़कों पर दौड़ाती नजर आएंगी, और पार्टियों या टेलीफोनिक गॉसिप में ''कौन कितने किलोमीटर स्कूटी या कार चलाती है?'' जैसे नए विषय पहले से ज्यादा तवज्जो पाएंगे।

संभव है कि 'लड़कीवाले' मास्कधारी उसके सामने हाथ जोड़कर भोजन करने का निवेदन करने लगें।

और मास्क ही नहीं, सेनिटाइजर भी एक अनिवार्य हिस्सा हो जानेवाला है जीवन का। बारातियों के स्वागत में अब तक जैसे गुलाब जल और केवड़ा छिड़का जाता रहा है वधू पक्ष के द्वार पर, अब सेनिटाइजर छिड़का जाएगा। सेनिटाइजर भी तब तरह-तरह की खुशबुओं में आने लगेगा—गुलाब सेनिटाइजर, केवड़ा सेनिटाइजर, मोगरा सेनिटाइजर और गंगाजल सेनिटाइजर।

मास्क और सेनिटाइजर के बाद सोशल डिस्टेंसिंग एक शिष्टाचार बन जानेवाली है। स्कूल में बच्चे टिफिन शेयर नहीं करेंगे। कैंटीन में खाना खानेवाले भी अब घर से डिब्बा ले जानेवाले हैं। बाहर खाना खाने और जंक फूड को प्राथमिकता देनेवाले अब मम्मी के हाथ का बना लंच बॉक्स लिए दिखाई दिया करेंगे। यात्राओं में लोग घर से पूड़ी और आलू की सब्जी बनाकर ले जाना पसंद करने लगेंगे, जैसे कि पुराने समय में तीर्थयात्रा पर निकले लोग दिन-दो दिन के लिए तो घर से ही शुद्ध घी की बनी पूड़ियां बांधकर चलते थे और उसके बाद जहां भी भूख लगती थी, तीन-चार पत्थरों से एक चूल्हा बनाकर इधर-उधर बिखरी सूखी लकड़ियां बटोरकर खाना पकाने लगते थे जिसके लिए सूखा राशन वे अपने साथ लेकर चलते थे, तो कोरोना काल के बाद हम अपनी यात्राओं में पाथेय बांधकर चलने की आदत डालनेवाले हैं। ये बारीक बदलाव भी नए समय का हिस्सा होंगे। कोरोना से लड़ने में एक मजबूत इम्यून सिस्टम की बात की जा रही है। और घर का खाना हेल्दी होने के साथ-ही-साथ आपको कोरोना संक्रमण की संभावना से भी बचाता है। घर का खाना खाने का चलन बढ़ने से जंक फूड की आदत छूटेगी।

शादी-ब्याह के अलावा भी जीवन के हर हिस्से में सेनिटाइजर लोग अपने साथ ऐसे ही रखेंगे जैसे पानी की बोतल। किसी के घर जाने पर पहले स्वागत सेनिटाइजर से होगा।

मोटापा और तमाम दूसरी बीमारियां दूर रहेंगी। लोग अधिक स्वस्थ होंगे और इससे उम्र लंबी होनेवाली है। कायः कस्य न वल्लभः – अपना शरीर किसको प्रिय नहीं है?

घरेलू कामों में आत्मनिर्भरता बढ़ेगी। डिशवॉशर, वॉशिंग मशीन और वेक्यूम क्लीनर तो अभी से ही अधिक बिकने लगे हैं। और 'वर्क फ्रॉम होम' करनेवाले पापा भी अब मम्मी की घरेलू कामों में मदद करते नजर आएंगे, क्योंकि अनावश्यक बाहर निकलना लोगों की आदतों में से निकल जानेवाला है और घर में अधिक रहना एक नया संस्कार बन जानेवाला है। ऑनलाइन ट्यूटोरियल का चलन बढ़ेगा और पहले जो मम्मी या दादी बच्चों को मोबाइल फोन देखते रहने पर डांटती थीं, अब वे ही तमाम काम बता रही होंगी, ''टिकिट बुक करवा दे।'' ''घर का फलां सामान मंगवा दे।'' या ''ये वाला बिल तो भर दे तनिक बेटा अपने फोन से।'' तकनीक के उस्ताद अब घर में 'नालायक' से 'लायक' हो जानेवाले हैं। बच्चे कोचिंग से पढ़ाई करने के बजाय ऑनलाइन तैयारियों को प्राथमिकता देंगे और घर की गृहिणियां जो हमेशा शिकायत करती रहती थीं कि घर में अकेलापन लगता है अब वे पति-बच्चों की फरमाइशों को पूरा करते-करते कुछ सख्ती दिखानेवाली हैं, ''खाना खाने के बाद अपनी थाली खुद रखकर आना सिंक में।''

घर के बच्चों, बुजुर्गों और गृहिणियों को अब पापा और भैया के साथ अधिक वक्त बिताने को मिलेगा। घरेलू कामों में आत्मनिर्भरता बढ़ेगी। सोशल डिस्टेंसिंग के फेर में लोग घरेलू नौकर हटाकर खुद ही अपने काम करना अधिक पसंद करने लगेंगे। तब किसी एक सुबह अगर कोई गृहिणी नई कामवाली की तलाश में घर से निकलेगी, तो वो ये देखकर चौंक जाएगी कि कल तक जो महरी घर-घर बर्तन मांजती थी, वो अब कॉलोनी के मोड़ पर अपनी फल-सब्जी की दुकान में व्यस्त है। और पुरानी मालकिन को सब्जी तौलकर देती हुई मुस्कुराकर कह रही है, ''मेरा नाम महरी नहीं, मिथिला है।'' ...आनेवाले समय में ये होगा 'आत्मनिर्भर भारत' में जीने का संस्कार और सलीका!

(चर्चित युवा लेखिका)

अब यह कुछ-कुछ तय-सा हो गया है कि हमें कोरोना के साथ ही जीना है। यह तभी संभव है, जब हम तकनीकी रूप से मजबूत होंगे। कोरोना काल में 'वर्क फ्रॉम होम' या 'ऑनलाइन एजुकेशन' ने उसकी जरूरत को साबित कर दिया है। आनेवाले समय में तकनीक ही जिंदगी का नया पता होनेवाली है

@ न्यूजिंदगी डॉट कॉम

कोरोना काल के बाद क्या जिंदगी ऐसी ही होगी या हमारा काम करने का हर रंग-ढंग बदल जाएगा? कई विशेषज्ञ कह रहे हैं कि अब हमें कोरोना के खतरे के बीच जीना सीखना होगा, तो क्या इसका दूसरा अर्थ यह है कि अब हमें तकनीक के आसरे ही जीना होगा? क्योंकि कोरोना के बीच लोगों की तकनीक पर निर्भरता बढ़ी है, इसमें संदेह नहीं है।

पीयूष पांडे

नोएडा की सॉफ्टवेयर कंपनी में काम कर रहे नीरज गर्ग कहते हैं, ''कोरोना ने तकनीक का महत्त्व साबित किया है। हम लोग पहले भी कभी-कभी ऑनलाइन मीटिंग करते थे, लेकिन अब जरूरत पड़ी, तो मजबूरी में ऑनलाइन मीटिंग करने लगे।'' नागपुर में शेयर कारोबार से जुड़ी रुचि महाजन कहती हैं, ''पहले हमारे घर में चार-पांच अखबार आते थे, लेकिन कोरोना के वक्त सब अखबार बंद हो गए। अब हम ऑनलाइन ही अखबार पढ़ते हैं। और अब ऐसा ही करेंगे, क्योंकि सारे अखबार ऑनलाइन उपलब्ध हैं और इससे कोई खतरा नहीं है।''

तकनीक के जरिये मिलनेवाली सुविधाओं का कोरोना काल में लोगों ने पहली बार सलीके से इस्तेमाल करना सीखा। पेशेवर लोग 'जूम'-जैसे सॉफ्टवेयर की मदद से मीटिंग करते दिखे, तो विद्यार्थी ऑनलाइन पढ़ाई करते हुए नजर आ रहे हैं। 'बिग बास्केट'-जैसे कई ऐप्स के जरिये लोग दाल और सब्जियां मंगा रहे हैं, तो रुपयों के लेनदेन के लिए पेटीएम, भीम और गूगलपे-जैसे कई ऐप का जमकर इस्तेमाल हो रहा है। कोरोना ने जीने के ढंग में आमूलचूल तरीके से बदलाव किया है। एक पब्लिक रिलेशन कंपनी में कार्यरत स्वाति अरोड़ा कहती हैं, ''जिंदगी पूरी तरह बदल गई है। घर का हर सामान ऑनलाइन आ रहा है। मुझे लगता है कि ये अच्छा है। इससे समय बहुत बचता है। कंपनियां भी अपनी ब्रांड वैल्यू के चक्कर में खराब माल नहीं बेचतीं।'' पेट की बीमारी से जूझ रहे 75 वर्षीय पूर्व बैंक कर्मचारी प्रकाश पांडे कहते हैं, ''मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि डॉक्टर को ऑनलाइन दिखाऊंगा, लेकिन ऐसा करना पड़ा।'' डांस टीचर स्मिता भटनागर कहती हैं, ''शुरुआत में एक महीने डांस क्लास बंद रखने के बाद मैंने ऑनलाइन ही क्लास लेना शुरू की। बच्चों ने भी हिस्सेदारी की और आजकल मैं ऐसे ही क्लास ले रही हूं। मुझे लगता है कि धीरे-धीरे हम सभी इस माध्यम पर भी सहज हो रहे हैं।''

तकनीक पर निर्भरता

पीयर्सन द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार कोरोना वायरस महामारी और उसके कारण लागू लॉकडाउन का दौर बीतने के बाद स्कूल और कॉलेजों को स्थायी तकनीकी अवसंरचना में निवेश करना होगा, जिसमें अध्यापकों का प्रशिक्षण डिजिटल वातावरण में काम करने के कौशल पर केंद्रित होगा और उच्च शिक्षण संस्थानों में परीक्षा पारंपरिक तरीकों की बजाय ऑनलाइन माध्यम से कराई जाएगी। लंदन स्थित पीयर्सन शैक्षिक प्रकाशन और परीक्षण के क्षेत्र में स्कूलों और छात्रों को वैश्विक स्तर पर सेवा देने वाली अग्रणी कंपनी है।

कोविड-19 का दौर बीतने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में उभरनेवाले आयामों पर किए गए अध्ययन में कहा गया—'कोविड-19 महामारी के कारण डिजिटल माध्यम से अधिक मात्रा में लोग पढ़ाई कर रहे हैं और कम अवधिवाले पाठ्यक्रम भी लोकप्रिय हो रहे हैं। इन बदलावों से कठिनाई तो हो रही है, लेकिन इनसे शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार के उदाहरण भी सामने आ रहे हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि शैक्षणिक जगत में डिजिटल माध्यम का प्रभाव लंबे समय तक रहने वाला है।'

अध्ययन में कहा गया—'स्कूल और कॉलेजों में पढ़ाई करने के लिए डिजिटल माध्यम का प्रयोग और अधिक किया जाएगा। शैक्षणिक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए व्हाट्सएप, जूम, टीम-जैसे एप और ईमेल का प्रयोग बढ़ेगा। अकादमिक संस्थान ऐसी अवसंरचना का विकास करेंगे, जिसमें अध्यापक और छात्र अकादमिक परिसर से बाहर रहते हुए भी पठन-पाठन कर सकेंगे। संस्थान ऐसी स्थायी तकनीकी अवसंरचना में निवेश करेंगे, जिसके माध्यम से गुणवत्तापूर्ण ऑनलाइन शिक्षा दी जा सकेगी।'

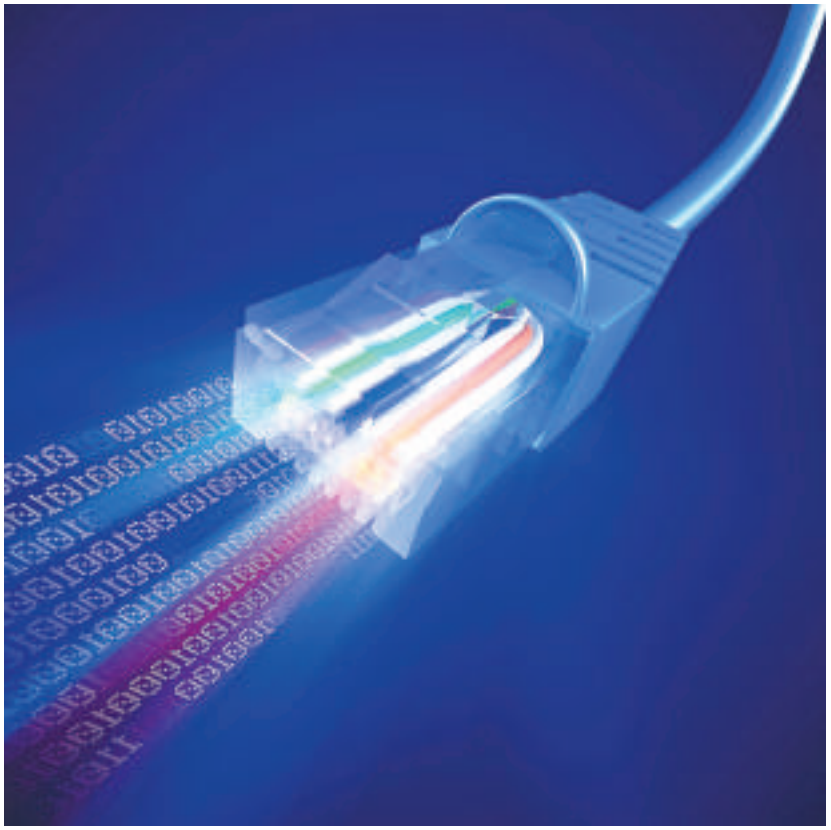

दरअसल, कोरोना काल में पहली बार तकनीक से लोग इस तरह रूबरू हुए कि उसके बिना काम चलता नहीं दिखा। ऑनलाइन गतिविधियों का अपना फायदा है, इसमें संदेह नहीं। सबसे बड़ा फायदा है समय की बचत। गुड़गांव की सॉफ्टवेयर कंपनी के मालिक रजत शर्मा कहते हैं, ''हमारे जो कर्मचारी पहले ऑफिस आकर जितना काम करते थे, उससे करीब 20 फीसदी ज्यादा इन दिनों घर रहते हुए कर रहे हैं। बहुत मुमकिन है कि पहले कई लोग दिल्ली से या नोएडा से गुड़गांव आते थे, जिसमें उन्हें बहुत समय लगता था और थकान भी बहुत होती थी, लेकिन अब ऐसा नहीं होता। हमने तय किया है कि 'वर्क फ्रॉम होम' मॉडल को जारी रखा जाएगा।''

लेकिन मसला सिर्फ वर्क फ्रॉम होम, ऑनलाइन खरीदारी, ऑनलाइन शिक्षा या कुछ नए ऐप के इस्तेमाल का नहीं है। मसला है जिंदगी जीने के तरीके का। कोरोना ने एक नई राह पर सबको ढकेल दिया है। प्रख्यात नृत्यांगना शोवना नारायण की मुख्य भूमिकावाली फिल्म 'आवर्तन' के कार्यकारी निर्माता अभिजीत कहते हैं, ''कोरोना ने पूरा फिल्म का कारोबार बदल दिया है। लोग ओटीटी पर ही फिल्में देख रहे हैं। 'गुलाबो सिताबो'-जैसी बड़ी फिल्में ओटीटी पर ही रिलीज हो गईं। आनेवाले दिनों में फिल्म का कारोबार पूरी तरह बदलेगा और लोग सिनेमाघर जाने से बचेंगे, क्योंकि मल्टीप्लेक्स में फिल्म देखना महंगा शौक है, जबकि ओटीटी प्लेटफॉर्म का पूरे साल का सब्सक्रिप्शन लोगों को एक फिल्म के बराबर पड़ता है।'' बॉलीवुड अभिनेत्री श्रेया नारायण मजाक में कहती हैं, ''अब सिर्फ एक टाइम मशीन का विकास बाकी है, जिसके जरिये लोग एक जगह से दूसरी जगह बिना किसी के संपर्क में आए चले जाएं। वरना, सोशल डिस्टेंसिंग के दौर में लोग सारा काम ऑनलाइन करना चाहते हैं और बहुत हद तक कर रहे हैं।'' निश्चित रूप से ऐसा हो रहा है। बैंक भी ऐसे एटीएम लगाने जा रहे हैं, जिनमें बिना कार्ड डाले पैसे की निकासी हो सके।''

इंटरनेट ने मध्य वर्ग की जिंदगी आसान की है, लेकिन सवाल यह है कि कोरोना

काल में लोग जिस तरह तकनीक पर आश्रित हुए हैं या उन्हें होना पड़ा है, उसके सिर्फ लाभ ही हैं? और क्या आनेवाले दिनों में इस जीवनशैली के कुछ नुकसान भी हैं, जिनकी ओर हमारा ध्यान नहीं गया?

एक पब्लिशिंग फर्म में कार्यरत सुशांत झा कहते हैं, ''दफ्तर और घर की तुलना नहीं हो सकती। दफ्तर में काम करने का एक मूड बनता है। 'वर्क फ्रॉम होम' मॉडल कुछ दिन के लिए ठीक है, लेकिन इससे मुझे अजीब बेचैनी होने लगी है। मैं घर पर रहते हुए काम पर फोकस नहीं कर पाता। कभी बच्चे के रोने की आवाज आती है, तो कभी मैं दो मिनट आराम करूं, तो पत्नी को लगता है कि मेरे पास काम ही नहीं है।'' गुवाहाटी के एक मॉल में मैनेजर गौरव पालीवाल कहते हैं, ''हर काम घर से नहीं हो सकता। तकनीक से मीटिंग वगैरह संभव है, लेकिन बाहर तो निकलना होगा। कोरोना के बाद साफ है कि जीवन हर वक्त जोखिम में रहेगा और आपको तैयारी के साथ निकलना होगा।''

निश्चित रूप से कोरोना काल ने लोगों को तकनीक में पारंगत किया है। दूसरी तरफ, बाजार ने तकनीक के आसरे उत्पादों और सेवाओं को ग्राहकों तक पहुंचाया, ताकि जरूरत बनी रहे, लेकिन तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता ने कई समस्याओं को जन्म दिया है। सबसे प्रमुख है स्वास्थ्य संबंधी समस्या। डॉक्टर सोनल गोयल कहती हैं, ''बच्चे घंटों कंप्यूटर या मोबाइल में आंख गड़ाए पढ़ रहे हैं। पढ़ाई के बाद भी मोबाइल उनसे छूटता नहीं है। टेलीविजन हमारे घरों में मौजूद है ही। ओटीटी प्लेटफॉर्म पर आती नई-नई वेबसीरिज और फिल्मों से आप उन्हें कैसे दूर रखोगे? जाहिर है उनकी आंखें अब जोखिम में हैं। इसके अलावा, ऑफिस में काम करते वक्त बैठने का एक सलीका होता है, जो घर में कई बार लागू नहीं हो पाता।''

बच्चे घंटों कंप्यूटर या मोबाइल में आंख गड़ाए पढ़ रहे हैं। पढ़ाई के बाद भी मोबाइल उनसे छूटता नहीं है। टेलीविजन हमारे घरों में मौजूद है ही।

मनोचिकित्सक एपी सिंह कहते हैं, ''दफ्तर सामाजिक मेल-जोल की भी एक जगह है। घर में रहते हुए चिड़चिड़ापन, बेचैनी व अनिद्रा की शिकायत लोगों में बढ़ी है। बुजुर्गों के लिए परेशानी बहुत बढ़ी है, हालांकि तकनीक उनके पास भी है, लेकिन उन्हें उसके इस्तेमाल की उतनी जानकारी नहीं है, फिर कोरोना काल में सबसे ज्यादा बंदिशें उन पर लगी हैं और ये बंदिशें कम होती नहीं दिख रहीं।''

डॉक्टर सोनल और एपी सिंह की बात में दम है, क्योंकि कोरोना के चलते घर में रहते हुए तकनीक ने चीजों को सुलभ बनाया, तो उसका जमकर इस्तेमाल हुआ, लेकिन तकनीक पर बढ़ती निर्भरता के चलते होनेवाली परेशानियां नजरंदाज हुईं। जरूरी है कि अब लोग इन परेशानियों को भी समझें।

(लेखक जाने-माने तकनीकी विशेषज्ञ हैं)

बिंदु–बिंदु विचार

प्रिय श्री,

तुमने लिखा है: बड़ी विपत्ति में फंस गई हूं; क्या करूं?

सबसे पहले 'विपत्ति' शब्द के आतंक से अपने को मुक्त करो। बात को थोड़ा सहज करके जानो–तुम विपत्ति में नहीं, प्रतिकूल परिस्थिति में फंस गई हो। शिकारी का आक्रमण शुतुरमुर्ग के लिए विपत्ति है, वह रेत में मुंह देकर आत्मसमर्पण कर देता है; शेर का आक्रमण शिकारी के लिए प्रतिकूल परिस्थिति है, वह प्राणपण से उसका सामना करता है, अपनी रक्षा करता है।

आशामय दृष्टिकोण हमारा सबसे बड़ा संबल, सखा और सहचर है, जो आधा गिलास पानी निराशावादी के लिए आधा खाली है, वही आशावादी के लिए आधा भरा है।

एक समुज्ज्वल संस्कृति के हम आवाहक आस्थावान हैं; आओ, परिस्थिति की प्रतिकूलता का आभार मानें कि हमें अवसर मिला कि हम अपने को कसौटी पर परख सकें। अवसर मिला कि धैर्यवानों में राम, सत्यवादियों में हरिश्चंद्र, दानियों में दधीचि और मानियों में दुर्योधन अमर हुए। परिस्थिति की प्रतिकूलता हमें हमारी अंतर्निहित, सुषुप्त शक्तियों का परिचय दे जाती है; हमारा हम से साक्षात्कार करा जाती है।

ईश्वर हमें गाढ़े जल में डुबोने के लिए नहीं, निर्मल करने के लिए लाता है।

अनुकूलता में तिनका भी गंगोत्री से सागर तक पहुंच जाता है–अनुपयोगी, अजाना तिरोहित हो जाता है; परंतु नमस्करणीय तो वह शिलाखंड है, जो प्रतिकूलता का नैरंतर्य सहकर भी अडिग रहता है, लाखोंलाख व्यक्तियों के लिए सेतु बन जाता है।

प्रतिकूलता से बड़ा हमारा कोई और शिक्षक हो सकता है–यह मेरी कल्पना से बाहर है। अनुकूलता की लोरी हमारे तेज को थपकी देकर सुला देती है, प्रतिकूलता का टहोका चुनौती देकर हमारे सर्वोत्तम को जाग्रत करता है।

श्री,

देवदारु के सबल स्पृहणीय वृक्ष गमलों के रक्षा-कवच में नहीं पनपते, वे आंधी-पानी के आघात सहते हैं और धरती पर अपनी पकड़ को सुदृढ़ करते जाते हैं। सान पर चढ़ता है तो छुरा धार पर जाता है; तराशा जाता है तो हीरा द्युतिमान होता है; आग में तपता है तो सोना निखर जाता है; पिसती है तो मेंहदी रंग दे जाती है और वक्त का थप्पड़ लगता है तो झांसी की लक्ष्मीबाई घर-घर में पुज जाती है!

प्रतिकूलता की पाठशाला में ही तो जीवन का सबसे बड़ा पाठ मिलता है। जरूरत सिर्फ यह है कि हम झोंकों में न बह जाएं, बल्कि अपनी सारी शक्तियों को एकत्र करके परिस्थितियों से जूझें, सुर्ख-रू होकर निकलें।

तुमने समझा न; गिलास को आधा खाली न मानो, उसे आधा भरा जानो; अपने अंदर के सत्य और सुंदर को जगाओ और साबित करो कि तुम तिनका नहीं हो, तुम सेतु हो।

चित्रांकन : सुदर्शन मल्लिक

–रामानंद 'दोषी'

(कादम्बिनी, जुलाई–1962)

...कल और दौर आएगा

सिनेमा भी अब पहले जैसा नहीं रहेगा। फिल्में पहले की तरह बनेंगी, पर बनाने का ढंग बदल जाएगा। कम स्टाफ के साथ, लोकेशन पर सारी चीजें एक साथ होंगी। सेनेटाइजर व मास्क भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे

कोरोना काल ने पूरे सामाजिक ताने-बाने पर बड़ा गहरा असर डाला है, तो भला इससे सिनेमा कैसे बच सकता है? जब जिंदगी के तौर-तरीके बदल गए हैं, तो सिनेमा तो जिंदगी का एक छोटा-सा टुकड़ा भर है। मुझे लगता है अब प्रॉडक्शन डिपार्टमेंट की सबसे ज्यादा जिम्मेदारी होगी। पूरा सेट सेनेटाइज होगा। मसलन जहां हीरो का बेडरूम है, ड्राइंगरूम है या आउटडोर शूटिंग हो रही है और हीरो या हीरोइन गाड़ी चला रहे हैं, यह सब कुछ सेनेटाइज किया जाएगा।

श्याम रावत

मेकअप रूम सेनेटाइज किए जाएंगे, क्योंकि फिल्मों में सबसे बड़ी भूमिका तो मेकअप रूम की है। मेकअप मैन की है। शूटिंग से पहले मेकअप रूम भी सेनेटाइज किया जाएगा। अगर आउटडोर शूटिंग हो रही है, तो प्रॉडक्शन डिपार्टमेंट की ओर से यूनिट को मास्क-ग्लब्ज देना जरूरी हो जाएगा। मेकअप की टीम को तो आवश्यक तौर पर ग्लब्ज पहनने होंगे, क्योंकि उसका काम ही ऐसा है। सेनेटाइजर की बोतल देनी होगी उसे और सिनेमैटोग्राफर को। सिनेमैटोग्राफर को तो हाथ बार-बार सेनेटाइज करने होंगे।

आपको याद होगा पुराने दौर में लोग मोबाइल बेल्ट एक केस या कवर में रखते थे, अब वहां सेनेटाइजर की बोतल

रखनी होगी। ठीक उसी तरह जैसे पुलिस अफसर अपनी रिवॉल्वर होल्सटर में रखते हैं। सेनेटाइजर की बोतल बेल्ट में लगे केस में रखनी होगी। सेट पर एक इंस्पेक्टर टाइप का आदमी रहेगा जो इन कायदे-कानूनों को लागू करवाता रहेगा। अगर कैमरामैन ने कैमरा छुआ तो वह हाथ सेनेटाइज करेगा।

एक और बड़ा परिवर्तन मैं इस दौर में और देख रहा हूं। अब हॉलीवुड और बॉलीवुड दोनों में जो कहानियां लिखी जाएंगी वह लोकेशन के हिसाब से सेंट्रलाइज्ड होंगी। फिल्ममेकर एक ही लोकेशन पर कई लोकेशन बनाएंगे। इसका फायदा यह होगा कि डीप प्लानिंग होगी। जैसे कोई गांव शूटिंग के लिए चुना गया है, तो यूनिट के जितने भी महत्त्वपूर्ण मेंबर हैं उन्हें वहां दस दिन पहले बसा देंगे। उनका रेगुलर चेकअप होता रहेगा। दस दिन बाद लगेगा कि कोरोना का मामला नहीं है, तो फिर मास्क और ग्लब्ज की जरूरत नहीं रहेगी।

एक्टर व टैक्नीशियन कोरोना फ्री हो जाएंगे। उनकी रोज जांच होगी, फिर हमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं। कैमरे पांच दिन पहले सेट पर आ जाएंगे। पहले क्या होता था कि कैमरे हों या कोई दूसरा सामान वह शेड्यूलवाइज लाया जाता था, पर अब सारा सामान एक साथ एक बार में स्टोर कर लेंगे। सारा सामान सेनेटाइज होगा। यह सब होने पर जैसे मेकर पहले शूटिंग करते थे, फिर वही माहौल हो जाएगा, पर उस माहौल को बनाने के तौर-तरीके बदल जाएंगे।

हीरो-हीरोइन के लिए 14 दिन का क्वॉरंटाइन पीरियड है। 14 दिन वह उसी लोकेशन पर रहेंगे जहां शूटिंग होनी है। वहां रहते हुए वे स्क्रिप्ट पढ़ सकते हैं। अपनी भूमिका के बारे में सोचेंगे। इस बीच शूटिंग नहीं होगी। सेट पर डॉक्टर रहेगा चेकअप करने के लिए, फिर शूटिंग सामान्य ढंग से होगी। कोरोना काल में सबसे बड़ा परिवर्तन यह होगा कि यूनिट का आकार छोटा हो जाएगा। यह नहीं कि दो सौ-ढाई सौ लोगों की यूनिट लगी है काम करने में। यूनिट में चुनिंदा लोग होंगे। वह चाहे आर्ट डिपार्टमेंट हो या डायरेक्शन डिपार्टमेंट या फिर कॉस्ट्यूम डिपार्टमेंट और प्रॉडक्शन डिपार्टमेंट, सबमें चुनिंदा लोग होंगे।

एक और बड़ा परिवर्तन मैं इस दौर में और देख रहा हूं। अब हॉलीवुड और बॉलीवुड दोनों में जो कहानियां लिखी जाएंगी वह लोकेशन के हिसाब से सेंट्रलाइज्ड होंगी।

मुझे लगता है कि कोरोना ने जो सबसे बड़ा काम किया है वह लोगों को साफ-सुथरा रहना सिखा दिया है। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शूटिंग स्थल पर खाने-पीने की व्यवस्था अब बदलेगी। आम तौर पर यूनिट को चार मील तो मिलते ही हैं। सुबह का नाश्ता, लंच, शाम का स्नेक्स और रात का डिनर। आम तौर पर एक्टर अपना खाना घर से ही लेकर आना पसंद करते हैं। अब यूनिट में डिस्पोजेबल प्लेटें होंगी। छुरी-कांटे सेनेटाइज होंगे। दस-बारह माइक्रोवेव ले लेंगे। खाना परोसने के लिए नॉन मेटेलिक प्लेट्स का इस्तेमाल किया जाएगा। इनमें यूनिट के लोग खाना खाएंगे। तरीका यह होगा कि खाना अपनी प्लेट में लेने के बाद 40 सेकेंड के लिए उस खाने को माइक्रोवेव ओवन में रखा जाएगा। माइक्रोवेव ओवन में खाना रखने का फायदा यह होगा कि उसके भीतर की गर्मी से वायरस मर जाएगा। इस तरह एक तरह से खाना भी सेनेटाइज हो जाएगा। ...मैं समझता हूं संसार में कोई भी चीज स्थायी नहीं है, तो कोरोना वायरस भी स्थायी नहीं है, पर कोरोना काल मनुष्यता को बहुत कुछ सिखाकर गया है। इसने जिंदगी के तौर-तरीके बदल दिए हैं। सिनेमा के तौर-तरीके बदल दिए हैं, पर सिनेमा का जो मकसद है उसे नहीं बदला है। मैं आशावादी हूं और मेरा मानना है कि दौर बदलते रहते हैं। आज यह दौर है, तो कल और अच्छा दौर आएगा।

(लेखक जाने-माने फिल्मकार श्याम बेनेगल के कास्टिंग डायरेक्टर हैं)

फिल्म निर्माण नए रंग-ढंग में

बदलते दौर में सिनेमा का चेहरा भी बदलेगा। अब होगा यह कि सूटिंग के लिए 75 लोगों की यूनिट है तो उसके रहने की व्यवस्था शूटिंग स्थल पर ही हो जाएगी। 70 दिन की शूटिंग है तो 70 दिन का सामान वहां मौजूद रहेगा। हीरो-हीरोइन के लिए जो वैनिटीज रखेंगे वह रोज सेनेटाइज होगी। एक्टरों के बैठनेवाली जगह रोज सेनेटाइज होगी। मेकअप डिपार्टमेंट का सबसे ज्यादा रिश्ता एक्टर से होता है, इसलिए उसका विशेष ध्यान रखा जाएगा। इसके अलावा एक परिवर्तन यह होगा कि एक्टर को विग पहनानी है या मूंछ लगानी है तो उसे पहले सेनेटाइज किया जाएगा। पहले शूटिंग स्थल पर एसी गाड़ी इस्तेमाल होती थी, पर अब एसी को तरजीह नहीं देंगे। एयर ट्रेवल सबसे खतरनाक है। इसके लिए सबसे ज्यादा सावधानी बरतनी पड़ेगी।

ऑफिस आखिर कितना ऑफिस

हालात ने लोगों को घरों में कैद कर दिया। और बहुत लोगों के लिए घर ही ऑफिस हो गया। भले ही इसके पीछे मजबूरी थी। लेकिन यह मजबूरी कहीं जरूरत न बन जाए। एक बात तय है कि अब ऑफिस का पूरा अंदाज बदलेगा। ऑफिस का बड़ा हिस्सा अब घर हो सकता है।

कोरोना लॉकडाउन की वजह से हम काम के ट्रेडिशनल तरीके को तोड़कर एक झटके में हाईटेक वर्ल्ड में पहुंच चुके हैं। यह सुनने में आपको थोड़ा अटपटा जरूर लगा होगा, लेकिन सच्चाई यही है।

मुकेश सिंह

बहुत दिनों से काम के हाईटेक होने की बात हो रही थी, पर क्या वास्तव में हम हाईटेक थे? नहीं! क्योंकि जब हाईटेक ही थे, तो फिर रोज ऑफिस क्यों जाते थे, रोज बच्चों को स्कूल क्यों भेजते थे, रोज बैंकिंग के लिए और बिजली बिल के लिए लाइन में खड़े क्यों होते थे? अब तो ऐसा नहीं कर रहे हैं। ऑफिस का काम घर से हो रहा है, बच्चों की पढ़ाई मोबाइल पर ही आ जाती है और बैंकिंग का सारा काम डिजिटली निपटा रहे हैं। कोरोना ने उन सभी चीजों को संभव बनाया जिसके बारे में कभी सोच रहे थे। खासकर ऑफिस का स्वरूप पूरी तरह से बदल गया। अब आपके मन में यही सवाल आ रहा होगा कि आखिर कोरोना लॉकडाउन के बाद ऑफिस कितना रहेगा ऑफिस?

लॉकडाउन के पहले ऑफिस था और लॉकडाउन के बाद भी ऑफिस होगा, लेकिन उसका स्वरूप और आकार बदल जाएगा। लोगों की संख्या वही होगी, लेकिन ऑफिस का आकार छोटा होगा। ज्यादातर लोग वर्क फ्रॉम होम करेंगे। इसका एक उदाहरण भी मैं आपको दे रहा हूं। कुछ दिन पहले ही हमारी बात दिल्ली के द्वारका स्थित एक प्रॉपर्टी डीलर से हो रही थी और उन्होंने बताया कि उनकी बिल्डिंग में चार फ्लोर हैं और लॉकडाउन से पहले दो फ्लोर किराए पर थे, परंतु लॉकडाउन शुरू होने के कुछ दिन बाद दोनों फ्लोर को दोनों कंपनियों ने खाली कर दिया और उसका कारण हमें बताया कि अब ऑफिस छोटे लेंगे, क्योंकि कंपनी के ज्यादातर लोग वर्क फ्रॉम होम में अडजस्ट हो चुके हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अब जो लोग उनका फ्लोर किराए पर लेने के लिए आ रहे हैं। उनके पास पहले इससे बड़ा ऑफिस था, लेकिन अब छोटा चाहते हैं, हालांकि कारण वही बताया कि ज्यादातर लोग अब वर्क फ्रॉम होम कर रहे हैं, इसलिए कुछ लोगों की सिटिंग चाहिए बस।

सबसे बड़ा सवाल है कि आखिर कैसे अचानक से ऑफिस का तरीका बदल गया? तो बता दूं कि अचानक से नहीं बदला, बल्कि पिछले कुछ बरसों से हम इस पर प्रयोग कर रहे थे, लेकिन ध्यान नहीं दे रहे थे कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि महीनों तक घर से ही काम करना पड़े। दिल्ली-मुंबई-जैसे बड़े शहरों में जहां फास्ट इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध हैं, वहां लोग पिछले कुछ सालों से सप्ताह या महीने में कुछ दिन वर्क फ्रॉम होम कर रहे थे, लेकिन लॉकडाउन शुरू होने पर यह सिलसिला फिलहाल स्थाई रूप से हो गया। आपको यह जानकर थोड़ी हैरानी भी होगी कि वर्क फ्रॉम होम को लेकर फरवरी 2017 में 'दि न्यूयॉर्क टाइम्स' में एक सर्वे की रिपोर्ट छपी थी। एक नामी कंपनी द्वारा यह सर्वे अलग-अलग क्षेत्रों के 15 हजार से भी ज्यादा लोगों पर किया गया था और इसमें से 43 फीसदी लोगों ने माना था कि वे अक्सर वर्क फ्रॉम होम करते हैं। आप सोच सकते हैं कि जब सन् 2017 में स्थिति ऐसी थी, तो 2020 में कैसी होगी? क्योंकि इस दौरान विश्वभर में इंटरनेट पैनेट्रेशन काफी तेजी से

बढ़ा है। रही बात भारत की, तो यह सच है कि हम तैयार नहीं थे, लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि जुगाड़ में हम आगे हैं और जल्दी से किसी चीज को अडॉप्ट करना हमारी आदत है। हमने वर्क फ्रॉम होम को जितना संभव था अपना लिया है। कोरोना वायरस की वजह से सभी ऑफिस बंद कर दिए गए और लगातार महीनों तक घर में रहना था। ऐसे में वर्क फ्रॉम होम का जुगाड़ बना लिया जिससे कि काम चलता रहे।

टैक्नोलॉजी हर नामुमकिन को मुमकिन बना देती है और नए ऑफिस सेटअप में तकनीक ने भरपूर योगदान दिया है। आज मेट्रो कल्चर में जब हम ऑफिस जाते हैं, तो सबसे पहले सुबह की मीटिंग के बाद काम शुरू होता है। सबसे खास बात यह कही जा सकती है कि टैक्नोलॉजी ने आज लॉकडाउन में भी इस मीटिंग को रुकने नहीं दिया है। सुबह के समय लोग अपने घर पर होते हैं, लेकिन मीटिंग के लिए गूगल मीट, जूम, माइक्रोसॉफ्ट टीम और स्काइप-जैसे ऐप का उपयोग कर रहे हैं। इससे ऑफिस के सारे स्टाफ मेंबर्स आपके स्क्रीन पर होते हैं और बिल्कुल कांफ्रेंस रूम स्टाइल में आप उनसे बातें कर सकते हैं। सबसे खास बात कि आप अपना स्क्रीन शेयर कर प्रजेंटेशन तक दे सकते हैं और पूरे कांफ्रेंस को रिकॉर्ड कर सकते हैं। नए ऑफिस सेटअप में इन ऐप्स ने जान फूंकने का काम किया है।

इसमें कोई शक नहीं कि जुगाड़ में हम आगे हैं और जल्दी से किसी चीज को अडॉप्ट करना हमारी आदत है। हमने वर्क फ्रॉम होम को जितना संभव था अपना लिया है।

वहीं अच्छी बात यह कही जा सकती है कि भारत में भले ही मोबाइल इंटरनेट धीमा हो, लेकिन बावजूद इसके इन कंपनियों ने अपने ऐप को इस तरह से ऑप्टिमाइज कर दिया है कि स्लो नेटवर्क पर भी यह सही से काम करता है।

नए ऑफिस सेटअप में सबसे ज्यादा मांग डाटा की बढ़ी है। लोग अब फास्ट ब्रॉडबैंड ढूंढ़ रहे हैं, हालांकि भारत में अब भी फाइबर ऑप्टिकल हर जगह नहीं है। ऐसे में सुपर फास्ट इंटरनेट जल्दी नहीं मिल पाता। 'टेलीकॉम रेग्युलेटरी ऑफ इंडिया' के अनुसार भारत में कुल 21.49 मिलियन, यानी कि सिर्फ दो करोड़ से ज्यादा वायर्ड ब्रॉडबैंड सर्विस हैं। इसमें से लगभग एक करोड़ सत्तासी लाख शहरों में और सिर्फ सत्ताइस लाख के आसपास गांवों में, यानी कि कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि गांव में फास्ट इंटरनेट नहीं है, परंतु इस कमी को पूरा कर दिया मोबाइल सर्विस ने। आज शहरों में 65 करोड़ से ज्यादा और गांवों में 51 करोड़ से ज्यादा मोबाइल यूजर हैं। इनमें से 44 फीसदी 4जी यूजर्स की संख्या है जो डाटा का उपयोग कर रहे हैं। आप सोच सकते हैं कि यह संख्या कितनी बड़ी है! वर्क फ्रॉम होम के दौरान इसी डाटा की मांग बढ़ी और इसे देखते हुए रिलायंस जियो, एयरटेल और वोडाफोन-आईडिया सहित सभी मोबाइल्स सेवा प्रदाताओं ने खास वर्क फ्रॉम होम 4जी

पैक पेश किया, जिसका यूजर्स ने भरपूर फायदा उठाया है।

फिलहाल तो कारण कोरोना, यानी कोविड-19 वायरस है, परंतु इस बात की बहस बहुत दिनों से चली आ रही है कि कई बड़ी कंपनियां नहीं चाहतीं कि स्टाफ ऑफिस आए। उसका उदाहरण मैं देता हूं। आपने देखा होगा बैंकिंग आपके द्वार। जहां बैंक का एक्जिक्यूटिव आपके घर आकर बैंकिंग से संबंधित आपका सारा काम कर देता है। बैंक नहीं चाहता कि आप बैंक में आएं, क्योंकि बैंक में जितनी भीड़ होगी उन्हें बैठाने के लिए उतनी जगह, संभालने के लिए उतना स्टाफ और उनकी आवभगत के लिए उतनी चीजें लगेंगी। ये सारी चीजें कॉस्ट, यानी कि खर्च को बढ़ाती हैं और सबसे ज्यादा कॉस्ट जगह की है, इसलिए यदि कम लोग आएंगे, तो कंपनी छोटे स्पेस में कम स्टाफ के साथ ज्यादा काम कर पाएगी।

आज प्राइवेट ऑफिस में भी यही है। हर एक सिटिंग की कॉस्ट होती है जो कि काफी ज्यादा है। पहले से कई कंपनियां इसे समझ चुकी थीं, लेकिन लॉकडाउन ने इसे अच्छे से समझा दिया। एक स्टाफ को ऑफिस में होने पर, चेयर-टेबल के अलावा, एसी-पंखा और चाय-पानी सहित कई दूसरे खर्च होते हैं, परंतु वह घर से समान प्रॉडक्टिविटी के साथ काम करे, तो फिर काफी खर्चे बचाए जा सकते हैं। इन बचे खर्चे का कुछ पार्ट यदि कंपनी इंटरनेट आदि के लिए स्टाफ को दे भी दे जिसकी कीमत सिर्फ 500-1000 रुपये मासिक हो सकती है, तो स्टाफ भी खुश रहेगा और कंपनी भी अच्छा-खासा खर्च बचा सकती है। नए ऑफिस सेटअप में इन्हीं बातों का ध्यान रखा जा रहा है।

कोरोना ने रोजमर्रा की जिंदगी में बहुत कुछ बदल दिया है जिसका असर लंबे समय तक रहेगा। लॉकडाउन खत्म होने के बाद भी न सिर्फ वर्क फ्रॉम होम बढ़ेगा, बल्कि अब ऑफिस का सेटअप भी अलग होगा। अब घर को लोग डिजाइन करेंगे, तो वर्क फ्रॉम होम का एक कोना अलग से होगा। घर में सुपरफास्ट इंटरनेट की मांग बढ़ेगी।

वहीं रही बात मेन ऑफिस की, तो अब जो ऑफिस बनेंगे वे पहले की अपेक्षा ज्यादा हाईटेक होंगे। कांफ्रेंस रूम केसाथ वीडियो कांफ्रेंसिंग प्राथमिकता होगी। भले ही स्टाफ ज्यादा हो, लेकिन सिटिंग 20-30 फीसदी तक ही रखी जाएगी और हर रोज ऑफिस बुलाने के बजाय जरूरत पर ऑफिस बुलाया जाएगा। कुल मिलाकर कहा जाए, तो अब हाईटेक ऑफिस में जाने के लिए आप तैयार हो जाएं।

(लेखक जाने-माने टेक्नो एक्सपर्ट हैं)

टेक्नोलॉजी ने कमाल किया

इसमें कोई शक नहीं है कि हम इंफ्रॉस्ट्रक्चर के मामले में दूसरे देशों के मुकाबले काफी पीछे हैं। ऐसे में सोचनेवाली बात है कि इतने बड़े तौर पर वर्क फ्रॉम होम कैसे संभव हो पाया? असल में इसे संभव बनाने का काम किया है टेक्नोलॉजी ने। भारत में वायर्ड ब्रॉडबैंड की तादाद बेहद ही कम हैं, परंतु देश में लगभग 99 फीसदी आबादी तक मोबाइल सेवा उपलब्ध हो चुकी है और इसमें बड़े पैमाने पर 4जी सर्विस आ चुकी है। ऐसे में वर्क फ्रॉम होम के लिए लोगों ने अपने मोबाइल इंटरनेट का उपयोग बड़े पैमाने पर किया। मोबाइल हॉटस्पॉट ऑन कर उसे लैपटॉप या कंप्यूटर से कनेक्ट कर ऑफिस के काम को घर से ही निपटा लिया, हालांकि यदि ब्रॉडबैंड सेवा बड़े पैमाने पर होती, तो इस काम में और भी तेजी आती।

फिल्मों में आउटडोर शूटिंग बहुत कम हो जाएगी। केवल बहुत जरूरी लोग ही शूटिंग के समय साथ होंगे, यानी यूनिट छोटी हो जाएंगी। फिजिकल डिस्टेंस के साथ-साथ मास्क, सेनेटाइजर भी यूनिट का जरूरी हिस्सा होंगे। मनोरंजन के लिए सिनेमा हॉल के अलावा नए माध्यमों का इस्तेमाल बढ़ जाएगा

ये वही शूटिंग तो नहीं...

सुनील आनंद

यह एक बड़ी सच्चाई है कि कोरोना महामारी ने पूरे वैश्विक समाज को एक बड़े संकट में डाल दिया है और जीवन के हर क्षेत्र में इसका व्यापक असर हुआ है। ऐसे में सिनेमा पर इसका असर नहीं पड़ेगा, यह नहीं कहा जा सकता। पर मेरा मानना है कि सिनेमा पूरी तरह बदल जाएगा या इस पर कोरोना महामारी का बहुत भयानक असर पड़ेगा, ऐसा नहीं है। कम-से-कम सिनेमा की तकनीक बिल्कुल बदल जाएगी, मैं यह भी नहीं मानता। सिनेमा की जितनी तकनीक एडवांस हो सकती है वह हो चुकी है। फिलहाल अगले कुछ वर्षों में इसमें कोई बदलाव की उम्मीद नहीं है। हां यह जरूर है कि कोरोना काल में सिनेमा के निर्माण में कुछ एहतियात आवश्यक तौर पर बरतनी होंगी। फिल्म यूनिट में फिजिकल डिस्टेंस के सिद्धांत का पालन करना होगा। यही नहीं फिल्म यूनिट का जो भारी-भरकम आकार होता था उसमें काफी कमी आएगी। फिल्मों की यूनिट्स छोटी हो जाएंगी। हॉलीवुड में भी बहुत बड़ी फिल्मों की यूनिट में दस से ज्यादा लोग नहीं आ रहे। वह भी फिजिकल डिस्टेंसिंग के नियमों का पूरा पालन कर रहे हैं। फिल्म मेकरों को सलेक्टेड लोगों को रखना पड़ेगा यूनिट में। ऐसे लोगों को जिनके बगैर आपका काम नहीं चल सकता। आर्टिस्ट सेट पर आने से कतरा रहे हैं। उन्हें बहुत सारी सुविधाएं दी जा रही हैं और सेफ गार्ड्स दिए जा रहे हैं।

मुझे लगता है कि आउटडोर शूटिंग बहुत कम हो जाएंगी। कोई स्वास्थ्य का रिस्क नहीं लेना चाहेगा। ज्यादातर शूटिंग्स इनडोर ही होंगी। इनडोर कलाकारों के लिहाज से काफी सुरक्षित रहेगा। लाइव एक्शन सीन भी इनडोर स्टूडियों में एक नियंत्रित वातावरण में ग्रीन स्क्रीन के सामने फिल्माए जाएंगे। हरा रंग डिजिटल कैमरे और डिजिटल सिनेमैटोग्राफी को पकड़ नहीं पाता। इसे यों भी कह सकते हैं कि डिजिटल कैमरे हरे और नीले रंग को देख नहीं पाते। इस तरह आउटडोर और इनडोर शूटिंग की जो भी फुटेज होगी उसका मेकर विजुअल इफेक्ट के साथ कंपोजीशन कर लेंगे। विजुअल इफेक्ट लैब में एक सीन को दूसरे के साथ जोड़कर एक नया सीन क्रिएट किया जा सकता है। इससे देखनेवाले को लगता है कि जो सीन फिल्माया गया है वह अभिनेता के साथ उसी लोकेशन पर फिल्माया गया है, जबकि वह दृश्य इनडोर में फिल्माया गया होता है। मान लीजिए किसी मेकर को गोलीबारी का सीन फिल्माना है, तो उसके लिए फिल्म की यूनिट वीएफएक्स सुपरवाइजर को हायर कर लेती हैं। वीएफएक्स सुपरवाइजर फिल्म मेकर के साथ बैठकर पूरे शॉट की प्लानिंग करता है और इस प्लानिंग में कैमरामैन और कैमरा क्रू के मेन असिस्टेंट भी उसके साथ मौजूद रहते हैं। वह सिचुएशन के मुताबिक सीन को क्रिएट करता है, फिर लोकेशन में हू-ब-हू वैसे ही फिल्माया जाता है।

अब मनोरंजन के लिए लोग सॉफ्टवेयर, यानी ओटीटी, अमेजोन प्राइम, नेटफ्लिक्स, हुलु, हाट स्टार-जैसे तमाम माध्यमों का इस्तेमाल करेंगे। कोरोना काल में यह ट्रेंड शुरू हो गया है। हॉलीवुड की जो बड़ी फिल्में अभी कोविड-19 की वजह से रिलीज नहीं हो पाई हैं वे ओटीटी प्लेटफॉर्म पर रिलीज होंगी। अक्षय कुमार की 'लक्ष्मी बम' भी ओटीटी प्लेटफॉर्म पर ही रिलीज होने जा रही है। मैं अपनी खुद की फिल्म–'वेगाटोर मिक्सर' भी ओटीटी प्लेटफॉर्म पर रिलीज करने की सोच रहा हूं। अगर कोविड-19 का इलाज निकल आता है, तो फिर इसे मल्टीप्लेक्सेज में भी रिलीज किया जाएगा, क्योंकि मल्टीप्लेक्सेज में फिल्म रिलीज करने से फिल्म की इमेज बनती है।

आउटडोर शूटिंग बहुत कम हो जाएंगी। कोई स्वास्थ्य का रिस्क नहीं लेना चाहेगा। ज्यादातर शूटिंग्स इनडोर ही होंगी। इनडोर कलाकारों के लिहाज से सुरक्षित रहेगा।

(लेखक प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक हैं)

अपने गीतों जैसे ही सहज थे योगेश

फिल्मी दुनिया में गीतकार योगेश मधुर गीतों के एक अलग आस्वाद के लिए जाने जाते थे। कई फिल्मों में उन्होंने यादगार और सदाबहार गीत लिखे। उनके गीतों में एक ऐसा जीवन-दर्शन झलकता है, जो दुखी मन पर मरहम लगाने का काम करता है। बीती 29 मई, 2020 को अकस्मात् उनका निधन हो गया। लेखक साझा कर रहे हैं उनकी यादें

जाने-माने गीतकार योगेश गौड़ से मेरा कोई बीस बरस पुराना रिश्ता था। मुझे याद है कि मैं मुंबई के गोरेगांव के एक लॉज में ठहरा हुआ था। फकीरी के दिन थे, सो सुबह नहाने-धोने के बाद दुकानों पर जाकर लैंडलाइन फोन से फिल्मी हस्तियों के नंबर पर फोन करता था। योगेश जी का 'रजनीगंधा' के लिए लिखा गीत-कई बार यूं भी देखा है ये जो मन की सीमा रेखा है-मेरे मन में रचा-बसा था। सो, एक दिन गोरेगांव की ही किसी दुकान से लैंडलाइन फोन पर उनका नंबर लगाया तो उधर से बेहद सुकोमल आवाज उभरी-कौन? तो मैंने पहली ही लाइन उनके 'रजनीगंधा' फिल्म के लिए लिखे गीत की दोहराई, कहा–''क्या मैं कई बार यूं भी देखा है ये जो मन की सीमारेखा है जैसे अमर गीत को रचने वाले गीतकार योगेश जी से बात कर रहा हूं।'' उन्होंने बेहद सुकोमल स्वर में जवाब दिया-''हां जी! आप कहां से हो?'' मैं उन दिनों अमर उजाला में सब एडीटर हुआ करता था। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और मिलने का समय

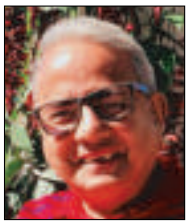

दीप भट्ट

मांगा। योगेश जी ने कहा–'आप तो मेरे घर से थोड़ी दूर पर ही ठहरे हैं, अभी आ सकते हैं।' वह उनसे मेरी पहली मुलाकात थी। और उस दिन जो रिश्ता उनसे कायम हुआ, वह उनके आखिरी दिनों तक कायम रहा। हम बैठे-बैठे बातें करते रहे। उनकी बालकनी में सुबह के सूरज का ताप बढ़ने लगा तो उन्होंने कहा कि यहीं बैठकर उन्होंने हृषिकेश मुखर्जी की फिल्म आनंद के लिए 'कहीं दूर जब दिन ढल जाए, सांझ की दुल्हन बदन चुराए' लिखा था। उन्होंने बताया था कि वे कोई बहुत बड़े कवि नहीं थे, पर कविता स्वभाव में थी तो कुछ-न-कुछ लिखते रहते थे।

फिल्में खूब देखा करते थे। योगेश जी राजकपूर के हद दर्जे के फैन थे। कहते थे कि अगर राजकपूर उनसे कुछ भी करने के लिए कहें तो वह कर गुजरेंगे। वह कर गुजरना किसी भी हद तक हो सकता था। फिल्मी दुनिया उन्हें आकर्षित करती थी, लुभाती थी तो उनके लखनऊ के दोस्त सत्तू भाई से वे अपने दिल की हर बात कहा करते थे। सत्तू भाई ने उन्हें प्रेरित किया और भरोसा दिलाया कि वे मुंबई जरूर जाएं और एक दिन जरूर बड़े गीतकार बनेंगे। यह भी कहा कि वे उनके लिए कोई भी छोटा-मोटा धंधा मुंबई में करेंगे। तो इस तरह 1968 में उनका मुंबई आना हुआ। बहुत फाकाकशी के दिन उन्होंने मुंबई में देखे थे। झोपड़ों में रहे। उनके दोस्त सत्तू ने उनके लिए कपड़ों की मिलों से लेकर कहां-कहां काम नहीं किया। योगेश जी बताते थे कि मुंबई में उनके कजिन ब्रजेंद्र गौड़ का पटकथा लेखन में बहुत नाम था। वे शक्ति सामंत की कई फिल्मों की पटकथा लिख चुके थे और तकरीबन उनका सभी बड़े-बड़े स्टारों से

योगेश जी राजकपूर के हद दर्जे के फैन थे। कहते थे कि अगर राजकपूर उनसे कुछ भी करने के लिए कहें तो वह कर गुजरेंगे।

नाता था। योगेश जी ने मुझे बताया था कि वे अपने कजिन के पास गए तो बहुत निराशा मिली। उन्होंने उनकी कोई भी मदद करने से एकदम इनकार कर दिया, सो लौट आए। लेकिन मुंबई की खाक छानते-छानते उनकी मेहनत रंग लाई। शुरुआत में उन्हें 'सखी राबिन' जैसी फिल्मों के लिए गीत लिखने पड़े। लेकिन इस फिल्म का लिखा उनका गीत 'तुम जो आओ तो प्यार आ जाए, जिंदगी में बहार आ जाए' बेहद पापुलर हुआ और उनका नोटिस लिया जाने लगा। बहरहाल, बहुत समय लग गया उन्हें अपनी जगह बनाने में। सलिल चौधरी से उनका मिलना हुआ तो फिर उनके होकर रह गए। वहां से उनके प्रतिष्ठित गीतकार बनने की राह खुली। सलिल दा के जरिये ऋषि दा से मिलना हुआ। ऋषि दा आनंद बना रहे थे और इस फिल्म का संगीत दे रहे थे सलिल दा। सलिल दा उन्हें लेकर ऋषि दा के पास गए और यहां से शुरू हुआ उस अमर गीत के रचने का सिलसिला–'कहीं दूर जब दिन ढल जाए, सांझ की दुल्हन बदन चुराए, चुपके से आए, मेरे खयालों के आंगन में, कोई सपनों के दीप जलाए'। इसी फिल्म के लिए उन्होंने एक और अमर गीत लिखा–'जिंदगी कैसी है पहेली हाए, कभी ये रुलाए कभी ये हंसाए...' योगेश जी ने बताया था कि राजेश खन्ना इन दोनों गीतों के लिए पागल था।

ऋषि दा 'जिंदगी कैसी है पहेली हाए' को कास्टिंग में रख रहे थे, पर राजेश खन्ना ऋषि दा से इस बात पर अड़ गए कि दादा, ये गीत तो मुझ पर ही फिल्माइए। बाकायदा उन्होंने ऋषि दा को सुझाव भी दिया कि वे हाथों में बैलून का गुच्छा लिए समुद्र तट पर इस गीत को गाएंगे...राजेश के जोर देने पर ही यह गीत उनकी इच्छा के मुताबिक फिल्माया गया। योगेश जी बताते थे कि राजेश उन दिनों उनके पीछे पागलों की तरह लगा रहता था कि दादा ये गीत मेरे लिए रखिए, ये गीत मेरे लिए रखिए। एक दिन ऐसा हुआ कि जिन गीतों ने राजेश की इतनी प्रसिद्धि बढ़ाई और उसे एक दार्शनिक का अंदाज दिया, उसी ने योगेश जी को पहचानने से इनकार कर दिया।

योगेश जी फिल्मी दुनिया की चालबाजियों को समझ नहीं पाते थे। उनके साथ कई बार धोखे हुए। मुझे बताते थे कि ऋषि दा की फिल्म 'चुपके-चुपके' के लिए गीत लिखने का लगभग तय हो गया था, पर अचानक एक दिन पता चला कि इसके गाने तो आनंद बक्षी लिख रहे हैं। मन को बहुत ठेस लगी, पर कुछ बोला नहीं। बाद में एक दिन किसी ने बताया कि एसडी बर्मन उन्हें याद कर रहे हैं और फोन करने को कहा है तो उन्होंने भारी मन से फोन किया। उधर से सचिन दा की आवाज उभरी अरे जोगेश, ऋषि दा एक फिल्म बना रहे हैं 'मिली', तुमको बुलाया है। कहा, मेरे साथ ही चलो तो वह दादा के साथ ऋषि दा के यहां चल पड़े। वहां तीनों बैठे तो ऋषि दा ने सफाई में कहा–मैंने कुछ नहीं किया। मैंने तो दादा को बोला था जोगेश को बुला लो। दादा ने कहा जोगेश तो कवि है वह 'चुपके-चुपके' के लिए लिख पाएगा। खैर, इस गिले-शिकवे के बाद मन से मलाल जाता रहा। 'मिली' के लिए योगेश जी ने अद्भुत गीत लिखे–'बड़ी सूनी-सूनी है जिंदगी ये जिंदगी', 'मैंने कहा फूलों से हंसो तो जरा वो मुस्कराकर हंस दिए', 'आए तुम याद मुझे गाने लगी हर धड़कन।'

योगेश जी से अनगिनत बार मिलना हुआ। हम दोनों फोन पर भी घंटों बातों में मशगूल रहते थे। जब भी मिले बेहद खुशमिजाजी से मिले। आज योगेश जी इस संसार में नहीं हैं। मन बहुत बोझिल है। उनके 'आनंद' के गीत के एक अंतरे जैसा था उनका और मेरा रिश्ता–कहीं तो ये दिल मिल नहीं पाते कहीं पे निकल आएं जन्मों के नाते...ढली थी उलझन बैरी अपना मन अपना ही होके सहे दर्द पराए...। आज उनके गीत के इस अंतरे की तरह–कभी यूं ही जब हुई बोझल सांसें, भर आईं बैठे-बैठे जब यूं ही आंखें, तभी मचल के दूर से चलके...–मन भरा हुआ है और आंखें नम। अलविदा योगेश जी, अलविदा दोस्त...!

(लेखक फिल्म समीक्षक हैं)

रजनीगंधा ने दिलाया मुकेश को नेशनल अवार्ड

अमर गायक मुकेश जिंदगीभर राजकपूर की फिल्मों के लिए गाते रहे, पर उन्हें कोई नेशनल अवार्ड नहीं मिला, पर यह योगेशजी की ही कलम का कमाल था कि रजनीगंधा के लिए लिखे इस गीत–'कई बार यों भी देखा है ये जो मन की सीमा रेखा है'–पर मुकेश को सर्वश्रेष्ठ गायक का नेशनल अवार्ड मिला। योगेशजी नीरजजी और शैलेंद्र के बहुत बड़े प्रशंसक थे। अक्सर उनके गानों की चर्चा करते थे।

मृत्यु के निकट जीवन की स्वीकृति

जब आप मृत्यु के एकदम निकट होते हैं और बचने की कोई उम्मीद नहीं होती तो क्या होता है? वह कौन-सी ताकत होती है, जो आपको ऐसी हालत में भी उम्मीद बनाए रखती है। प्रसिद्ध लेखक टॉम ली के साथ तब हुआ जब वे अपने करियर के शिखर पर थे

टॉम ली

मरने के करीब के पहले मैं भयंकर चिंता से घिरा रहता था—लेकिन उसके बाद इसका कोई चिह्न नहीं है।

कुछ सप्ताह पहले, टीवी और रेडियो प्रस्तुतकर्ता रिचर्ड बेकन खबरों में थे, लास एंगेल्स की एक हवाई उड़ान के दौरान वे फेफड़ों के संक्रमण से बीमार होकर दक्षिण लंदन के लेविशाम अस्पताल में सात दिन तक कोमा में थे। बाद में डॉक्टरों ने उन्हें बताया कि वे तकरीबन मर गए थे। इस पर मेरी पहली प्रतिक्रिया थी; उनके और उनके परिवार के लिए कितना भयानक। पहली से कम या ज्यादा, मेरी दूसरी प्रतिक्रिया थी, बस सात दिन? यह कुछ नहीं है।

2012 में लेविशाम से कुछ मील दूर किंग्स कॉलेज अस्पताल में मैंने तीन सप्ताह कोमा में बिताए थे और ऊपर से इक्यावन दिन इंटेंसिव केयर में। अकसर जब मैं लोगों को कहता हूं कि मुझे निमोनिया हुआ था तो वे हैरान हो जाते हैं और पूछते हैं, मैं इसकी जद में कैसे आ गया? असल में, निमोनिया सामान्य है, हालांकि यह बुजुर्गों या जिनकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता कमजोर है उनके लिए खतरनाक है, फिर भी एंटीबायोटिक्स से इसका इलाज हो जाता है। मेरे केस में, यह सब इतना सीधा न था। बेकन की भांति कुछ समय के लिए मैं भी मौत के बहुत करीब था। एक समय परामर्शदाता (कंसल्टेंट) ने मेरे परिवार को कहा कि मैं लंदन का 'सर्वाधिक बीमार आदमी' था।

यह शुरू हुआ जब मेरे प्रोफेशनल जीवन का शायद सर्वोत्तम और सर्वाधिक उत्तेजक काल था। एक बड़े साहित्यिक पुरस्कार, द संडे टाइम्स शर्ट स्टोरी प्राइज के लिए मैं शॉर्टलिस्टेड हुआ था। और जिस दिन मैं बीमार हुआ उसके पिछले दिन सेंट्रल लंदन में मैंने जूलियन सैंड्स को मेरी कहानी का मंचन करते देखा था। तीन दिन के बाद मुझे क्राइस्ट चर्च कॉलेज में पुरस्कार सम्मान समारोह में जाना था, लेकिन तब तक मैं बिस्तर पर था, लग रहा था फ्लू का प्रकोप है। मैंने खाना खाना छोड़ दिया था, मेरी दाहिनी ओर दर्द था और मैं हर चार घंटे पर अपना बुखार नीचे रखने के लिए पैरासीटामाल और एस्प्रीन खा रहा था। उस शाम मैं बिस्तर में ट्विटर अपडेट कर रहा था, खबर आई, मैंने तीस हजार पौंड का प्राइज नहीं जीता है, मैं चिंता करने के लिए बहुत बीमार था।

इसके चार दिन के बाद मुझे विभ्रम (हेलुसिनेशन) हो रहा था और मैं खड़ा होने में असमर्थ था। मुझे एंबुलेंस में अस्पताल ले जाया गया। इसके चार दिन के बाद मैं कोमा में था और ट्यूब्स लगी हुई थीं—एक नली मेरे गले में उतारी गई थी, ताकि मेरे दोनों फेफड़ों और रक्तवाहिनियों में ऑक्सीजन पहुंचाई जा सके। अगले तीन सप्ताह, मेरे न जानते हुए नाटकीय थे। एंटीबायोटिक्स का मुझ पर

टॉम ली की कहानियां और लेख सबसे पहले संडे टाइम्स, एसक्वायर्स, प्रॉस्पेक्ट्स, द डबलिन रिव्यू में आए और खासे चर्चित हुए। 2017 में उनका उपन्यास 'द अलार्मिंग पल्सी ऑफ जेम्स ऑर' प्रकाशित हुआ। उनका पहला उपन्यास 'ग्रीन फ्लाई' 2008 में आया था।

असर नहीं हो रहा था और गंभीर सेप्सिस तथा एक्यूट रेस्पेरेटरी डिस्ट्रेस सिंड्रोम (एआरडीएस), जिसमें फेफड़ों में सूजन आ जाती है और वे सख्त हो जाते हैं, अतः अक्सीजन की प्रोसेसिंग बंद कर देते हैं, जिसमें मृत्यु दर पचास प्रतिशत है। विदेश में काम कर रहा मेरा भाई लौट आया था और बाकी घर के सारे सदस्य बारी-बारी से अस्पताल आते। पहली कक्षा में पढ़ने वाली मेरी पांच साल की बेटी को मुझे दिखाने के लिए लाया गया। मैट्रेन ने मेरी पत्नी से कहा था यदि बच्चे अपने मरते माता-पिता को देख लेते हैं तो अपने लंबे जीवन काल में अच्छी तरह समायोजन कर पाते हैं। मेरा छह महीने का बेटा दूर रखा गया था।

इसके बावजूद मैं बचा रहा। तीन सप्ताह के बाद संक्रमण घटा, मैं कोमा से जगा और अगला दौर इंटेंसिव केयर के मनोभय का था, जिसमें मुझे विश्वास था कि नर्सें और डॉक्टर मुझे मारने की कोशिश कर रहे हैं। मैं तेजी से चंगा हुआ।

कभी भी मेरा स्वाभाविक इरादा सुखांत नहीं रहा है। मैंने कई कहानियां लिखी हैं और कोई भी सुखांत नहीं हैं। चरित्र निर्माण, दुःख द्वारा विकास, जो आपको मार नहीं देता है, वह आपको मजबूत बनाता है... मैं इन सब विचारों के विरुद्ध हूं। मैं घिसा-पिटा और बकवास करने वाला भी नहीं दीखना चाहता हूं। लेकिन जब लौटकर सोचता हूं—जैसा अभी कर रहा हूं, छह साल बाद, अस्पताल के गायब होते उन लंबे, अकसर मायूसी भरे दिनों को, जिसे किसी अन्य तरीके से देखना कठिन है—मौत की निकटता जीवन की स्वीकृति है।

यह जिंदगी की स्वीकृति केवल इसीलिए नहीं है कि मैं बच गया, बल्कि बीमारी की बिना किसी विरासत के बच गया, क्योंकि डॉक्टरों ने भविष्यवाणी की थी—एक या दो साल स्वास्थ्य लाभ की अवधि में घर पर ऑक्सीजन टैंक रखना, शायद स्थायी अपंगता हो। ऐसा बहुत भाग्य से होता है जैसी मेरी बीमारी थी। एआरडीएस विरल से भी विरलतम है और इस बीमारी को अभी तक बहुत कम समझा गया है। बाद में डॉक्टर मुझे इसके होने का कोई कारण नहीं बता पाए, लेकिन अस्पताल छोड़ने के तीन महीनों के भीतर मैं अपने काम पर था, तकरीबन सौ प्रतिशत फिट। मेरी इस कठिन घड़ी का एकमात्र शारीरिक साक्ष्य मेरे गले पर ट्यूब डालने के लिए बनाए छेद का एक बहुत छोटा-सा गुलाबी निशान है। पिछले सालों में मैं अस्पताल में कई बार वापस गया हूं, इंटेंसिव केयर के दूसरे मरीजों से मिलने के लिए। जाहिर है, उनमें से कई इतने भाग्यशाली नहीं थे।

यह जीवन की स्वीकृति थी, क्योंकि अनगिनत अजनबियों ने ध्यानपूर्वक, कुशलतापूर्वक और बिना धैर्य खोए निरंतर मेरे जीवन को बचाने के लिए कार्य किया था। क्योंकि मुझे बचाने के लिए अतिविशिष्ट प्रयास और मानवीय सहयोग का एक सिस्टम बनाया गया था और वे कोई भी थे, अगर उन्होंने यह किया। इस पर मैंने खूब विचार किया इंटेंसिव केयर में और चंगा होने पर जब मुझे सामान्य वार्ड में स्थानांतरित कर दिया गया। मेरे बिस्तर के सामने एक सोमाली लड़का था 17 या 18 साल का, बिना किसी विजिटर या परिवार का, इंग्लिश नहीं बोल पाता था। मुझे पता नहीं कि उसकी बीमारी क्या थी, लेकिन वह सदमे में था, केवल अस्पताल स्टाफ उसके पास था। यह जीवन की स्वीकृति थी, क्योंकि उन्हें जो करना चाहिए था लोग वह कर रहे थे। जब मैं कोमा में था, वे अपना काम और जीवन छोड़कर मेरे बिस्तर के पास बैठते, मेरा हाथ पकड़ते, मुझे पढ़कर सुनाते, मेरे परिवार के लिए खाना भेजते और मेरी पत्नी और बच्चों की देखभाल करते, पत्र-ईमेल लिखते, मोमबत्तियां जलाते, गाना गाते या मंत्र

यह जीवन की स्वीकृति थी, क्योंकि अनगिनत अजनबियों ने ध्यानपूर्वक और बिना धैर्य खोए निरंतर मेरे जीवन को बचाने के लिए कार्य किया था।

अपने-अपने लॉकडाउन

मैं विगत चार माह से 'कादम्बिनी' पत्रिका का पाठक हूं और प्रत्येक अंक को पढ़कर अभिभूत हो जाता हूं। जून-20 अंक में दो लेखों को पढ़कर बहुत अच्छा लगा। उनमें एक था नीलोत्पल मृणाल का 'कुछ नया-नया-सा यह आदमी है,' और दूसरा रश्मि भारद्वाज का–'आधी आबादी का लॉकडाउन।' इस बात में कोई मतद्वय नहीं है कि दोनों लेखक उच्च प्रतिभाशाली हैं, लेकिन जहां नीलोत्पल लॉकडाउन को एक अवसर के रूप में देखते हैं, वहीं रश्मि नकारात्मक विचार लिए स्त्री परतंत्रता का ढोल पीट रही हैं। कौन ऐसा शिक्षित व्यक्ति है जो स्त्रियों की परवशता की कहानियों से परिचित नहीं है? और फिर वर्तमान की परिस्थितियों के लिए चार हजार वर्ष पूर्व तक की लंबी यात्रा का क्या औचित्य है? एक तरफ नीलोत्पल यह मानते हैं कि लॉकडाउन ने व्यक्ति को परिवार के अति-सम्मुख उपस्थित होने का अवसर उपलब्ध कराया है। वहां वह उन लोगों से मेल-मिलाप करेगा, जिन्हें वह जीवन की आपाधापी में पीछे छोड़ आया था। आज चतुर्दिक खबर आ रही है कि घर में रहनेवाले पुरुष, जिन्हें घर के कोने याद नहीं थे, अब समस्त कार्यों में हाथ बंटा रहे हैं। यह भी तो स्त्री-पुरुष समानता की तरह ही है। सांख्य दर्शन के प्रकृति-पुरुष के मिलन की भांति यहां भी वही स्थिति उत्पन्न होती प्रतीत होती है। रश्मि भारद्वाज वाल्मीकि कृत रामायण का एक श्लोक उद्धृत करती हैं जो स्त्री की पर-निर्भरता को व्यक्त करता है। यह भी अद्भुत है, फिर वेदों में उल्लिखित शिकता, घोषा, अपाला, मैत्रेयी इत्यादि स्त्रियों को क्या कहा जाएगा, जो वैदिक ऋचाओं के सृजन में सहयोग करती थीं? रामायण की स्वयंवर परंपरा के बारे में लेखिका क्या कहेंगी जहां स्त्री को पुरुष चुनने की आजादी थी? काकतीय वंश की रुद्रमा गणपति, रजिया सुल्तान, मध्यकाल की भारतीय वीरांगनाएं, इतिहास जिनकी गौरवशाली गाथाओं से पटा हुआ है, वे कौन थीं? कुछ मामलों को देखकर एकांगी धारणा बनाना चार्वाक के अवैध सामान्यीकरण के समान है। यद्यपि इसके बावजूद स्त्रियों के हित में तब तक आवाज उठाना जरूरी है जब तक कि उन्हें पूर्ण समानता हासिल न हो जाए। मैं रश्मिजी को इस बात के लिए धन्यवाद देना चाहता हूं। साथ ही नीलोत्पल को भी बहुत शुभकामना देना चाहूंगा। यही सजगता एक दिन स्त्री-पुरुष समानता के नए प्रतिमान स्थापित करेगी।

हेमंत कृष्णराव पाटीदार
उबदी (म. प्र.)

जून-20 के अंक में मुझे वरिष्ठ लेखक विश्वनाथ त्रिपाठीजी का लिखा लेख–'हमारी संवेदनाओं का लॉकडाउन,' बहुत ही अच्छा, पठनीय व मार्मिक लगा। उन्होंने लॉकडाउन के इस दौर का जो वर्णन सजीवता से किया वह तो बहुत ही अच्छा है, उन्होंने इस लेख के माध्यम से बेबस सरकारों और प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा का जो सजीव वर्णन किया वह वाकई आज के इतने प्रगतिशील व विकसित दौर में सभी की पोल खोलने को काफी है। इस लॉकडाउन ने वाकई जिंदगी की रफ्तार को रोक दिया है। इस अंक के और लेख व कहानियां भी खासी पसंद आईं।

विनोद कुमार
बनारस (उ. प्र.)

इस बार की 'कादम्बिनी' में मुझे अन्य लेखों के अलावा खासकर स्वामी चैतन्य कीर्ति के लेख–'उस एकांत को साधना जरूरी है'–बहुत ही अच्छा लगा है। इसमें एकदम सही कहा गया है कि–'अपने भीतर के एकांत को साधे बिना इनसान, समाज के लिए कुछ नहीं कर सकता। एकांत साधना साधक को 'स्व' से ऊपर उठाकर 'पर' से जोड़ती है और हमारे भीतर के भय को दूर करती है।' यह बात वाकई हम सब महसूस करते हैं और सच भी है कि जब तक हम अपने भीतर के एकांत को नहीं साध लेंगे, तब तक हम किसी के लिए भी कुछ नहीं कर सकेंगे। आप इसी प्रकार मेरी प्रिय 'कादम्बिनी' के माध्यम से हम पाठकों का ज्ञानवर्धन कराते रहिए, यही कामना है।

सुनील गर्ग
दिल्ली

जून-20 की 'कादम्बिनी' में 'फिर से पटरी पर आएगी जिंदगी'–श्याम बेनेगल का लिखा लेख, वाकई एक सार्थक संदेश देता हुआ महसूस हुआ है। वाकई आज के कोरोना काल की वजह से सब ओर निराशा व अवसाद के दौर में यह एक आस, ढांढ़स और संतोष देता प्रतीत हुआ। यह सही बात है कि अन्य क्षेत्रों की तरह फिल्मों को भी कोरोना की मार पड़ी है। परंतु यह आशा जरूर होनी चाहिए कि आनेवाले समय में जिंदगी वापस पटरी पर जरूर आएगी और नए व बदले अंदाज में जीवन चलेगा। इस बार के अन्य लेख भी खासे उत्साह बढ़ानेवाले रहे।

सीमा
बुलंदशहर

'कादम्बिनी' के इस अंक में मुझे सबसे ज्यादा पसंद आया विवेक काटजू का लिखा लेख–'कितना कुछ बदलेगी दुनिया!' यह सिर्फ संकेत ही नहीं,

जपते। असीमित दया और बाद में जब मैं बेहतर था, मेरे लिए लंच और डिनर खरीदने पर जोर देते। यह जीवन की स्वीकृति थी कि मेरा एक जॉब था, वे मुझे वेतन दे रहे थे और उन्होंने मुझे पार्ट-टाइम काम पर वापस आने दिया और हम लोग मेरी बीमारी से बरबाद नहीं हुए।

मैं ठीक होने के दौरान काम से छुट्टी पर था, मेरे पास खूब समय था, बरसों बाद मैंने एक उपन्यास लिखना प्रारंभ किया– 'दि अलार्मिंग पल्सी ऑफ जेम्स ऑर'।

ठीक तत्काल इसके बाद और शायद एक साल बाद मैं सातवें आसमान पर था। मैंने मौत को धोखा दिया था। हर कोई जानता था मैं कितना बीमार था। जब बाद में मैं डॉक्टरों को दिखाने गया तो उन्होंने कहा कि वे मेरे बचने की आशा नहीं करते थे। मेरा चंगा होना एक करिश्मा था। मुझे करिश्मा अनुभव हुआ। मैंने इस अनुभव के बारे में लिखा और इसके बारे में बोला। मेडिकल स्टूडेंट, नर्सों के लिए, अस्पताल के लिए फंड उगाहने के लिए वीडियो बनाए। मैंने सेलेब्रिटी होने का मजा लिया, अपने खास होने का मजबूत अनुभव हुआ; मैं कगार पर था और लौट आया था।

मगर यह भी धुंधला हो गया, और लंबे समय में, इसके विपरीत सहज ज्ञान युक्त फायदे हुए। बीमारी के पहले कई साल मैं समय-समय पर अपने स्वास्थ्य को लेकर भयंकर हताशा से घिरा रहता था। इंटेंसिव केयर में, खासकर मेरे जैसा लंबे समय तक रहना, माना जाता है मनोवैज्ञानिक घाव के निशान छोड़ जाता है। सामान्यतः जिसे पोस्ट-ट्रमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर कहते हैं। जब मैं ठीक हो रहा था, लेकिन अस्पताल में था, मेरी पत्नी और भाई मजाक करते कि जब मैं अस्पताल से छूट जाऊंगा, वे मेरी व्हीलचेयर सीधे सड़क के पार यूनाइटेड किंग्डम के सबसे बड़े मानसिक अस्पताल माउड्सले में ले जाएंगे। ऐसा कुछ नहीं हुआ। अगर कुछ हुआ तो इसका उल्टा सच–बीमारी की गंभीरता ने मुझे भविष्य में आने वाली शारीरिक और मानसिक बीमारियों के लिए प्रतिरोधित कर दिया। मेरी निराशा दब गई थी और पिछले छह वर्षों में मैंने शायद ही एक दिन के लिए भी बीमारी की छुट्टी ली। शायद ऐसा ही होता है, मगर मुझे शक है। मेरा एक दोस्त दावा करता है कि बीमारी के पहले से मैं अब 10 प्रतिशत अधिक अच्छा आदमी हूं। मैं सोचता हूं, वह सामान्य अर्थ में कहता है और मैं उससे तर्क नहीं करूंगा।

एक और अच्छी बात हुई। जब मैं ठीक होने के दौरान काम से छुट्टी पर था, मेरे पास खूब समय था, बरसों बाद मैंने एक उपन्यास लिखना प्रारंभ किया–'दि अलार्मिंग पल्सी ऑफ जेम्स ऑर'। किताब में मेरी उम्र का परिवार और जॉबवाला एक आदमी एक सुबह अपने आधा लकवाग्रस्त चेहरे के साथ जागता है। अपने घर और करीबी पड़ोस में बंद उसकी जिंदगी सुलझनी शुरू हो जाती है। आश्चर्य, लोगों ने इसे मेरे अनुभव के समानांतर बताया। मैंने अस्पताल में रहने पर लंबा लेख लिखा और वह प्रकाशित हुआ। ग्रांटा के एक संपादक, लौरा बारबर ने इसे पढ़ा और मुझसे संपर्क किया। जानना चाहा, मैं और क्या लिख रहा हूं...और पिछले साल के अंत में उपन्यास प्रकाशित हुआ।

मुझे लगा, यह सब डींग हांकने जैसा लगता है और अभी भी शारीरिक और मानसिक निशान हो सकते हैं, जो दीखते नहीं हैं, लेकिन कभी उभर सकते हैं। किसी भी हाल में वह मैं नहीं था, जिसने बुरी तरह सब झेला। जब बात हाथ से बाहर हो गई, मैं गहरी अचेतनावस्था में था और यह मेरे आसपास के लोग थे, जो मेरी मृत्यु की वास्तविक संभावना पर विचार करने को मजबूर थे। यह भूत कभी मेरा पीछा नहीं करता है कि मेरा क्या होता, लेकिन मैं जिंदगी के अन्य संस्करण के विषय में अक्सर सोचता हूं, बातें जो नहीं हुई। मेरे बच्चे मेरे बिना बड़े होते, पितृविहीन, मेरी बेटी धुंधली स्मृतियों के साथ, मेरा बेटा–शायद, उसके लिए आसान होता–बिना किसी स्मृति के। हालांकि यह सब मुझे रुला देता है, वास्तव में यह बुरी अनुभूति नहीं है, केवल सुलझाव और आभार है।

अतः मेरी बेहतर सहजवृत्ति के विरुद्ध, सुखांत, कम-से-कम अभी के लिए। आखिरकार, हममें से कोई नहीं जानता है, कौन-सी आपदाएं कब आ जाएं, यह मेरे लिए स्पष्ट हो गया है।

(अनुवाद : विजय शर्मा)

बनारस के सांस्कृतिक वातावरण पर बहुत कुछ लिखा गया है, पर इस विविध लेखन के बीच स्व. अजय मिश्र ने अपने रचनाकर्म में एक अलग ही अंदाज में इस शहर को देखा। उनके उपन्यास 'ढकोसला' को पढ़ते हुए पाठक विद्या की नगरी काशी को जैसे साक्षी भाव से महसूस करता है। मिश्रजी की पहली पुण्यतिथि (31 जुलाई) पर इस रोचक उपन्यास का एक अंश

मेरी देहरी में ही होनी थी यह ख्वारी

हाय हाय !

अजय मिश्र

आप उस आदमी को जानते तो होंगे, देखा चाहे न हो। वही, जिसका नाम विधाता है। उसके यहां एक दिन चिरंजीवी हनुमान जी पहुंचे। विधाता उस समय कुशा के आसन पर धोती पहन कर बैठे थे और हंस के एक पंख का अंतिम हिस्सा एक पत्थर पर रगड़ कर नुकीला बना रहे थे।

विधाता ने हनुमानजी को दूर से ही देख लिया था, पर वे अपने काम में दत्तचित्त रहे, मानो हनुमान को देखा ही न हो। हनुमान मृत्युलोक में विचर चुके थे, और रावण के दरबार में राजदूत का कार्य कर चुके थे। मतलब यह कि शिष्टता तथा स्वयं को मिलने वाले महत्त्व से परिचित होने के कारण सम्मान की अपेक्षा भी करते थे। अतः उनको विधाता का इस तरह जड़मत की तरह बैठे रहना बहुत बुरा मालूम हुआ।

उन्होंने अत्युच्च स्वर में 'रामचंद्रजी की जै' कहकर वाणी में उपेक्षा का छौंक लगा कहा, ''का हो विधाता, का हो रहा है?''

विधाता ने चिढ़कर सरोब कहा, ''रामचंद्र से बहुत बड़े-बड़े आदमी मैं उत्पन्न कर चुका हूं, जिनमें से बहुत से अपनी लीला समाप्त कर चुके हैं। ऐसे आदमी भी उत्पन्न हो चुके हैं, जिन्हें तुम्हारे रामचंद्र के अस्तित्व तक पर संदेह है, पर तुम आदत से लाचार हो। वही 'रामचंद्र'! देखते नहीं मैं अपना आवश्यक काम कर रहा हूं!''

हनुमान ने वाणी को यथाशक्य मुलायम कर व्यंग्य से कहा, ''टकहिया पंख को घिसना तुम्हारा आवश्यक कार्य है? जैसे-जैसे तुम्हारी उम्र हो रही है, बुढ़मस बढ़ रहा है। मर्त्यलोक में लिखने के लिए एक से एक सुंदर और टिकाऊ कलम मिलते हैं। अगली बार लेता आऊंगा। जब से तुम उत्पन्न किए गए हो, आदमी ही गढ़ रहे हो। अब तक तुम्हें एक्सपर्ट हो जाना चाहिए था, पर तुम रांद काट रहे हो। एक काम भी ठीक से नहीं करते। अगले चुनाव में तुम्हें बदलना होगा। तुमसे ठीक तरह काम नहीं हो पा रहा। मैं तो रामचंद्र की जै कहने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूं। अपना काम ठीक से करता हूं, इसीलिए चिरंजीवी बना दिया गया हूं।''

विधाता ने लंबी सांस लेकर कहा, ''क्या करूं, फेर में फंस गया हू। अब तो ऊब गया हूं एक ही काम करते-करते। घबराहट में कभी आदमियों को जानवर की बुद्धि दे बैठता हूं, कभी जानवरों को मनुष्य की वाणी। इसीलिए, मुझसे न आदमी प्रसन्न हैं, न जानवर, न पशु।''

हनुमान बोले, ''कदाचित इस घबराहट में शिष्टता से भी हाथ धो बैठे हो। अतिथि-सत्कार का सामान्य शिष्टाचार भी भूल गए हो।''

विधाता ने कहा, ''मैंने ही तुम्हें रचा है। क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें भी अभ्युत्थान दिया करूं?''

हनुमान जी ने उत्तर दिया, ''जब तुमने मुझे रचा था तब मैं बंदर था। अब मैं तुम्हारा उत्तराधिकारी हूं। तुम्हारे बाद मैं ही विधाता होऊंगा, यह भूल गए हो क्या?''

विधाता ने कहा, ''पर आदमी को अपना भूतकाल याद रखना चाहिए।''

हनुमान बोले, ''यही बात तुम पर भी लागू होती है। स्वयं को सर्वशक्तिमान मानने की मूर्खता छोड़ दो। इस समय तुम निठल्ले बैठे हो। वेद के दो-चार मंत्र ही सुना दो।''

विधाता बोले, ''कल नारद मर्त्यलोक से अदरक लाया था, खाओगे?''

हनुमान ने रोयें फुलाकर कहा, ''मर्त्यलोक के बारे में, वहां की रीति-नीति तुमसे ज्यादा जानता हूं। वहां की कहावतें और मुहावरे भी याद हैं, जैसे तुम्हें वेद!''

विधाता ने कुछ समझाने के भाव से कहा, ''अदरक का मुहावरों से कोई संबंध नहीं है। लो, जरा यह पंख रगड़ो तो। हर घंटे एक पंख घिस जाती है।''

हनुमान तनिक उपेक्षा भाव से बोले, ''तुम क्या बाबा लोक में हो अब तक? मैं मर्त्यलोक से तुम्हारे लिए कुछ पार्कर, शेफर्स कलम ले आऊंगा। तब खूब लिखना।''

विधाता के चारों ओर बोतलें रखी थीं। हनुमान ने देखा और पूछा, ''यह क्या है, किस लिए?''

विधाता ने कहा, ''इनमें आत्माएं हैं। इन्हें मर्त्यलोक में भेजने से पहले इनके माथे पर इनका भाग्य लिखना होता है।''

हनुमान ने कहा, ''पर बोतलों के मुंह तो खुले हुए हैं। आत्माएं बाहर नहीं निकलतीं?''

उत्तर मिला, ''आत्माओं की स्वाभाविक गति नीचे की ओर होती है, अतः वे बोतल की तली से चिपकी रहती हैं। नारद मर्त्यलोक से यही एक काम की चीज लाया।''

प्रश्न हुआ, ''सबके भाग्य लिखते हो? थक न जाते होगे!''

विधाता ने कहा, ''वो तो है। कभी हाथ दुखने लगता है। कभी चित्त नहीं करता, तब माथे पर अंगूठा दबाकर छोड़ देता हूं। उन आत्माओं का भाग्य अनिश्चित रहता है।''

हनुमान ने अप्रसन्नता से कहा, ''यह तो तुम्हारा अन्याय हुआ। स्पष्ट हुआ तुम अपना काम ठीक से नहीं करते। ब्रह्मा से शिकायत तो बनती है।''

विधाता बोले, ''जहां जाना है जाओ। एक ही आदमी को इतना काम सौंपने का फल क्या होगा। आठों पहर, चौबीसों घड़ी एक ही काम। फिर मैं तो ऑनरेरी काम करता हूं। वेतनभोगी होता, ओवर टाइम, बोनस या अवकाश मिलता तो कुछ उत्तरदायित्व होता।''

हनुमान का ध्यान कहीं और था। उन्होंने दो बोतल उठा लीं और कुछ सोचने लगे। तब एकाएक एक की आत्मा दूसरी बोतल में उड़ेल दी।

विधाता ने घबरा कर कहा, ''अरे मूर्ख! यह क्या किया। मनुष्य की आत्मा में उल्लू की आत्मा मिला दी!''

हनुमान बोले, ''तुमने मुझे मूर्ख कहा, अब मूर्खता झेलो।'' हनुमान ने उसमें एक तीसरी आत्मा मिला दी।

विधाता अपना माथा पीटने लगे, ''अरे रे, शठ, अधम, पातकी। यह क्या! कुत्ते की आत्मा भी।''

उधर हनुमान को मूर्खता का दौरा पड़ गया था। वे चपलता से शठता का प्रमाण दिए जा रहे थे। अनेक आत्माएं एक ही बोतल में गड्डमड्ड कर उन्होंने विजयी भाव से विधाता को देखा, मानो कह रहे हों, ''अब कर लो, जो कर सकते हो!''

जन्म : सन् 1946 में काशी के एक वैदिकधर्मी परिवार में। तीन दशक तक पत्रकारिता करने के बाद सन् 2004 में उपन्यास विधा के जरिये साहित्य-सृजन में सक्रिय हुए। काशी के सांस्कृतिक इतिहास पर शोध के अलावा चार अन्य उपन्यासों पर काम कर रहे थे कि 31 जुलाई, 2019 को इनका देहांत हो गया।

विधाता रो रहे थे, ''हे मेरे सिरजनहार! गधे की आत्मा भी। अरे रे, बक, टिट्टिभ और खटमल की आत्मा भी। ओह, कोकिल और झींगुर भी! हे वेद पुरुष, हे अनादि, हे अनंत! कैसी अद्‌भुत, विचित्र लीला देख रहा हूं।''

हनुमान ने विनोदपूर्वक कहा, ''यह क्या वस्तु प्रस्तुत हुई है?''

विधाता ने उल्टा हाथ जांघ पर पटक कर कहा, ''क्या जाने क्या बना!''

हनुमान की विनोदवृत्ति बढ़ रही थी, बोले, ''मर्त्यलोक के आदमी तुमसे अधिक बुद्धिमान हैं। वे ऐसी चीजों को चों-चों का मुरब्बा कहते हैं।''

विधाता अवाक् हो हनुमान को देख रहे थे।

हनुमान ने आगे कहा, ''पर तुम प्राण क्यों दे रहे हो? इन्हें अलग कर लो।''

विधाता बोले, ''यह नहीं हो सकता, यह वस्तु अब ऐसे ही रहेगी।''

हनुमान ने पूछा, ''इसमें प्रधानता किसकी रहेगी!''

विधाता ने बताया, ''मनुष्य की।''

''क्यों?''

विधाता बोले, ''तुमने वह दर्शन पढ़ा है, जिसमें बतलाया गया है कि आत्मा शरीर-प्रमाण होती है, अर्थात् जिसका जितना बड़ा शरीर उतनी बड़ी आत्मा। हाथी की हाथी जितनी, कबूतर की कबूतर जितनी। अतः यहां मनुष्य की ही प्रधानता रहेगी।''

हनुमान बोले, ''मैं संगीतशास्त्र का भी आचार्य हूं। मैं इस चों-चों के मुरब्बे को पैसा भर संगीत देना चाहता हूं, तुम चवन्नी भर वेद दे दो।''

विधाता बोले, ''तुम और संगीत, क्यों मसखरी करते हो!''

हनुमान ने कहा, ''कैसे विधाता हो, जानते हो मैं नारद से अच्छी दंत-वीणा बजाता हूं। कहो तो सुना दूं! कुछ पैसे न लूंगा, बस पेट भर अमरूद खिला देना, चाहो तो कंद-मूल फल।''

विधाता ने कान पर हाथ धर कहा, ''आज तो कृपा करो, बहुत हुआ।''

हनुमान न माने, तभी बोले, ''इस आत्मा के माथे पर कुछ लिख, चलता करो पहले।''

विधाता ने कहा, ''पर कलम तो नहीं है।''

हनुमान, ''तो अंगूठा ही लगा दो, वो तो तुम करते ही हो।''

विधाता बोले, ''अच्छा!''

वे अंगूठा लगाने को उद्यत हुए। हनुमान ने रोक दिया, ''आज एक प्रयोग करो। हाथ के बजाय पांव का अंगूठा लगा दो।''

विधाता ने वैसा ही किया। अंगूठा लगा आत्मा नीचे झोंक दी। हनुमान बोले, ''मैं तुमसे प्रसन्न हुआ। सुनो, मैं तुम्हें मार्ग-संगीत सुनाता हूं।''

हनुमान आलाप करने लगे। विधाता को लाचार हो सुनना पड़ा। आलाप के सप्तक में पहुंचने पर उन्होंने दोनों कानों में रूई ठूंस ली। हनुमान पर कोई असर न हुआ।

आलाप समाप्त कर हनुमान ने पूछा, ''उस आत्मा का क्या हुआ?''

विधाता ने बताया, ''उसने काशी में जन्म ग्रहण कर आधा जीवन बिता दिया है। उसका नाम है राधेमोहन जोशी।''

हनुमान ने अविश्वास प्रकट किया, ''आधा जीवन बिता दिया, ऐसा क्यों कर हुआ भला?''

हनुमान आलाप करने लगे। विधाता को लाचार हो सुनना पड़ा। आलाप के सप्तक में पहुंचने पर उन्होंने दोनों कानों में रूई ठूंस ली। हनुमान पर कोई असर न हुआ।

विधाता ने जवाब दिया, ''इस बार जब से युग आरंभ हुआ, तब से कितने लाख वर्ष बीत गए। जानते हो, पर हमारी घड़ी में तो दिन के ग्यारह बजे हैं। तुमने मर्त्यलोक के हिसाब से सत्ताईस वर्ष आलाप किया।''

हनुमान ने कहा, ''किया होगा, महान् संगीतज्ञ ऐसा ही करते हैं। अब 'स्थायी' सुनो।''

विधाता ने कहा, ''अब बहुत बंदरपन हो चुका। जाओ, मुझे काम करने दो।''

हनुमान नाराज हो गए, ''तुम बहुत अकृतज्ञ हो। मैंने तुम्हारा कितना समय बचाया। तुम्हें अलग-अलग लिखना होता। मेरी कृपा से एक ही बार अंगूठा लगाने से काम हो गया और तुमने मुझे बंदर कहा, लो देखो मेरा बंदरपन, भुगतो।''

जब तक विधाता सावधान हों, वे हनुमान की लांगूल में कसे जा चुके थे। हनुमान जी ने उन्हें कुल नौ बार बड़े वेग से घुमाया और तब कुशासन पर पटक बिना कुछ बोले एक ओर चल दिए। ●

कहानी

सेकंड चांस

तन्वी और सुधांशु पढ़ाई के दौरान एक ही कॉलेज में साथ-साथ थे। बाद में सुधांशु एमबीए करने के लिए दूसरे कॉलेज में गया तो तन्वी ने भी इंजीनियरिंग में दाखिला ले लिया। संयोग से दोनों की नौकरी एक ही शहर में लग गई। आखिर वह दिन भी आया कि दोनों की शादी हो गई। तन्वी को उसकी कंपनी ने दो साल के लिए अमेरिका भेजा और फिर...

क्षमा शर्मा

कई बार सुधांशु को लगता है कि मम्मी को गांव से यहां लाकर कहीं गलती तो नहीं की ! वह भी क्या करता ! पापा जब तक थे तब कम-से-कम दो तो थे, मगर पापा के जाने के बाद मम्मी अकेली रह गईं। गांव में भी घर में सिर्फ बूढ़ी चाची ही बची हैं। सारी यंगर जेनरेशन बाहर जा चुकी। चाची और मम्मी गांव की दूसरी औरतें सब जैसे-तैसे वक्त काट लेती थीं, मगर सुधांश और बसु को हमेशा मम्मी की चिंता लगी रहती थी। जब वे एकाएक

सभी चित्रांकन : सुदर्शन मल्लिक

जन्म : अक्तूबर, 1955 में आगरा में। प्रसिद्ध बाल पत्रिका 'नंदन' की कार्यकारी संपादक रहीं। अब तक पचास से अधिक कृतियां प्रकाशित। कई भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। कुछ कृतियों पर टेलीफिल्में व धारावाहिक भी बन चुके हैं। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से नवाजी जा चुकी हैं।

रात में पलंग से गिर गईं तो बस सुधांशु और बसु ने तय किया—नहीं, अब उनके साथ किसी का होना जरूरी है। बसु ने कहा था कि वह उन्हें अपने साथ अमेरिका ले जाएगी, लेकिन मम्मी वहां जाने को कतई राजी नहीं हुईं। उनका कहना था कि गांव के बाहर कहीं और अपने ही देश में उनका मन नहीं लगता है। ऐसे में उस देश में, जहां न लोग अपने जैसे हैं, न भाषा अपनी है, वहां उनका मन कैसे लगेगा?

अगर सुधांशु चाची को साथ ले आया होता तो शायद मम्मी का मन लग जाता, मगर चाची ने कहा कि वह यहां से कहीं नहीं जाना चाहतीं। अब तो चाहती हैं कि बस अपने पुरखों की जगह पर ही आंखें मुंद जाएं। इसीलिए मजबूरी में मम्मी को यहां लाना पड़ा था, मगर यहां आकर वे गुमसुम-सी हो गई थीं।

सुधांशु ने जब बसु को यह बताया था, तो वह भी चिंता करने लगी थी। हर रोज उन्हें फोन करती थी। सुधांशु भी दफ्तर से फोन करके पूछता रहता था, दिन में कई बार। उसने कह रखा था कि उसे लौटने में देर हो जाती है, वे सो जाया करें, मगर जब तक वह घर नहीं आ जाता था, वे जगी रहती थीं।

वह जब तक कपड़े बदलकर आता था, वे गरम रोटी सेंककर ले आती थीं। इसके लिए वह कितनी बार कह चुका था कि बनाकर रख दिया करें और सो जाया करें, वह आकर खाना खा लिया करेगा, मगर वे नहीं मानती थीं। खुद भी तब तक नहीं खाती थीं, जब तक सुधांशु न खाए। आज भी जब दोनों खाना खाने लगे तो सुधांशु की नजर घड़ी पर पड़ी। साढ़े ग्यारह बज रहे थे। सुबह फिर उसे जल्दी जाना था। बाहर इतना शोर- शराबा था कि लगता ही नहीं था कि दिन बीत चुका है। वह सोचने लगा कि मम्मी को बताए कि नहीं। क्या पता सवेरे समय मिले कि नहीं!

उसने कहा—''तन्वी का फोन आया था।''

''क्या कह रही थी''—उन्होंने चेहरे पर बिना कोई भाव लाए कहा।

''कुछ नहीं वापस आ रही है, एक महीने के लिए।''

वे कुछ नहीं बोलीं तो सुधांशु ने फिर कहा—''बता रही थी कि बहुत परेशान है।''

''तो तू क्या करेगा?'' फिर मम्मी ने धीरे से कहा—''अपने आदमी के साथ खुश नहीं है?''

''शायद। कह रही थी कि आकर बताएगी।''

''हमें क्यों बताएगी? वह जाने, उसका काम जाने। वैसे भी हमारे पास किसी की परेशानी का क्या इलाज है? अपनी परेशानी सबको खुद ही झेलनी पड़ती है। घर तो नहीं आएगी? मत बुलाना। क्या करेगी यहां आकर!''

''क्या मां, पुरानी बातों को जाने दो। आ भी जाए तो आने दो।''

''ठीक है तू जान! मम्मी अब किसी बात पर अड़ती नहीं हैं।''

वे सोने चली गईं तो सुधांशु भी लेट गया। हालांकि डॉक्टर ने कहा था कि खाकर एकदम न लेटा करे। इससे स्ट्रेस और बी. पी. बढ़ता है, मगर करे भी तो क्या, रोज इतनी देर से लौटता है कि फिर सोने के अलावा और कोई काम बचता ही नहीं है। उस पर भी आफिस की यह शिकायत कि यार रात को फोन नहीं उठाते। उठा लिया करो। वह एक बेआवाज रोबोट दौड़ रहा है, सुबह से शाम तक।

लेट गया, मगर दिमाग न जाने कहां-कहां घूमता रहा।

तन्वी अब क्यों मिलना चाहती है? इतने सालों में तो न कभी कोई बातचीत, न मैसेज, न स्काइप, न फेस टाइम, न व्हाट्स एप, न फेसबुक। सोने की कोशिश करता तो तन्वी सामने आकर खड़ी हो जाती।

पहली बार की मुलाकात उसे याद आने लगी थी। एक घबराई हुई सी लड़की, जिसे जरा-जरा-सी बात पर डर लगता था। क्लास में सब उससे कहते—'अरे तन्वी बाहर कुत्ता भौंक रहा है। डर तो नहीं रहीं? और देख वह चिड़िया उड़ी, कहीं तुझे अपने साथ ऊपर उड़ा ले जाए और धड़ाम से नीचे पटक दे।' बाकी सब खूब हंसते, तन्वी मुसकरा कर रह जाती थी। कभी उसकी आंखें टप-टप करने लगतीं।

तन्वी अब क्यों मिलना चाहती है? इतने सालों में तो न कभी कोई बातचीत, न मैसेज, न स्काइप, न फेस टाइम, न व्हाट्स एप, न फेसबुक।

एक बार सुधांशु छुट्टियों के बाद जब गांव से शहर लौटकर कॉलेज गया, तो पता चला कि तन्वी के पापा नहीं रहे। कार एक्सीडेंट में डेथ हो गई। सुधांशु को किसी ने फोन भी नहीं किया, न बताया, वरना तो बीच में आ जाता। क्लास के कुछ लोग तो पहले ही उसके घर होकर आ चुके थे। वह उसके घर गया तो देखकर दंग रह गया। वहां पहुंचकर उसे लगा तन्वी क्यों डरती है। क्या दुख है उसे। जिसके लिए बहुत से लड़के-लड़कियां तरस रहे हैं, वह सब कुछ तो है उसके पास। इतना बड़ा घर। तीन-चार कारें। ढेर से फूल। अमरूदों और अनारों से लदे पेड़। इतने फूल कि दूर तक देखो तो सतरंगे इंद्रधनुष ही नजर आएं। कई नौकर-चाकर। किसी बात की कोई कमी नहीं। हां, अब अपने पापा की कमी तो हमेशा महसूस होगी ही।

वहां तन्वी के आने से पहले उसकी मां ने कहा था—''बेटा इसे समझाओ। पापा के जाने के बाद घर से ही नहीं निकलना चाहती। अकसर तुम्हारा नाम लेती है कि पढ़ने में तुम बहुत होशियार हो। उसकी बहुत मदद करते हो।'' तब उसने कहा था—''नहीं आंटी, ऐसा कुछ नहीं है। वह भी बहुत मेहनती है। बहुत भोली-सी है। बात-बात पर रोने लगती है।''

''अकेली रही है। इसके पापा ने फूलों में रखा इसे हमेशा। कभी कोई तकलीफ न हो इसे, इसकी चिंता की। इसलिए जरा-सी बात पर घबरा जाती है।''

कुछ देर में तन्वी भी आकर बैठ गई। सुधांशु चाय पीने लगा, मगर उसने चाय की तरफ देखा तक नहीं। न कोई बात ही की। सुधांशु चलते हुए कहने लगा''कल कॉलेज आ रही हो न!''

लेकिन वह कुछ नहीं बोली। अगले दिन सुधांशु इंतजार करता रहा। क्लास के अन्य लोग भी, मगर तन्वी नहीं आई। इतवार को सुधांशु ने तन्वी से फोन करके कहा—''कल उसे जरूरी काम है। उसके नोट्स कॉलेज में दे जाए। बहुत जरूरत है।''

उसे लग रहा था कि शायद वह न आए। नोट्स का तो बहाना भर था, लेकिन जब एक बड़ी कार आकर रुकी और तन्वी उसमें से उतरी तो कई बच्चों को यकीन नहीं आया। अकसर तो बस में आती-जाती थी। जब वह आई तो किसी ने उसे जल्दी वापस न लौटने दिया। सब उसका मन किसी-न-किसी तरह से लगाने में लगे रहे। जब वह लौटने लगी तो देखकर मुसकराई। शायद बहुत दिनों बाद। इस तरह दोबारा से उसका कॉलेज आना-जाना

शुरू हुआ।

पढ़ाई खत्म होने के बाद सुधांशु एमबीए करने चला गया और तन्वी ने इंजीनियरिंग में दाखिला ले लिया। अकसर सुधांशु और उसकी व्हाट्स एप पर बात होती। स्काइप पर भी दोनों बतियाते। सुधांशु अकसर सोचता कि तन्वी अब घर से दूर अकेली कैसे रहती होगी? बात-बात पर क्या पहले की तरह ही डरती होगी।

संयोग भी कई बार कितने विकट होते हैं कि दोनों को एक ही शहर में नौकरी मिल गई थी। सुधांशु को तन्वी अच्छी भी लगने लगी थी, मगर अच्छी लगने भर से तो कुछ नहीं होता।

एक बार दोनों ने दीवाली पर घर जाने के लिए इकट्ठे एअर टिकट बुक कराए थे। एअरपोर्ट पर दोनों फ्लाइट का इंतजार कर रहे थे कि पता चला था कि फ्लाइट डेढ़ घंटे लेट है। तन्वी के घर पहुंचते रात हो गई। सुधांशु को गांव जाने के लिए इस वक्त कोई बस भी न मिलती। तन्वी की मां ने कहा था–''बेटा यहीं रुक जओ। तुम्हारा ही घर है।'' रुकने के आलावा और कोई चारा भी नहीं था।

सवेरे नाश्ते की टेबल पर तन्वी की मां ने कहा था–''तो अब तो तुम नौकरी करने लगे। आगे क्या इरादा है?''

''आगे से मतलब आंटी?''

''अरे, वही शादी-वादी!''

''अभी तो कुछ नहीं सोचा है।''

वे हंसकर बोलीं–''तुम न सोचो तो हम सोच लेते हैं।''

सुधांशु हक्का-बक्का रह गया–''क्या मतलब आंटी?''

''तन्वी तुम्हें पसंद करती है।''

''आंटी, यकीन मानिए इस बारे में मेरी उसकी कभी कोई बात नहीं हुई।''

वे फिर हंसीं–''नहीं हुई तो अब हो जाएगी। मेरी तो हुई है।''

तभी तन्वी एक प्लेट लेकर आई। उसके हाथ में पेठा था। उसे पता था कि सुधांशु को पेठा बहुत पसंद है।

''लो बात चली भी नहीं कि पक्की भी हो गई। मुंह मीठा करो।''–उसकी मम्मी ने हंसते हुए कहा। सुधांशु एकदम कन्फ्यूज हो गया। न ये लोग उसके परिवार के बारे में जानते हैं, न उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में ही। क्या कहे कुछ समझ में नहीं आया।

उसने उन्हें बताने की कोशिश भी की। जब तन्वी की मम्मी किसी काम से उठ गईं तो उसने कहा–''यार, शादी की बातें तो हमारी कभी नहीं हुईं!''

''अब तो हो रही हैं।''

सुधांशु को तन्वी से इस जवाब की उम्मीद तो कतई नहीं थी। जवाब सुनकर उसे एक बदली हुई तन्वी नजर आई। सुधांशु बोला–''देखो, मैं गांव से आता हूं। मेरे माता-पिता आज भी खेती करते हैं। न हमारे पास पैसा है। लाइफ स्टाइल भी तुम्हारे घर जैसा नहीं।''

''पैसे का क्या! यहीं इतना है कि और जरूरत नहीं पड़ेगी। नौकरी तो शौकिया करती हूं। इतना पढ़-लिख लिया है तो घर में बैठकर भी क्या करूं! बाकी पापा ने बहुत कुछ मेरे नाम पहले से ही कर रखा है। यहां जो कुछ है, सब अपना ही तो है!''

उस दिन घर पहुंचकर सुधांशु ने जब अपनी मम्मी को बताया तो वे कहने लगीं–''एक बार लड़की तो दिखा दे।'' सुधांशु ने उन्हें मोबाइल पर फोटो दिखा दी थी।

तन्वी की मम्मी बस एक बार ही गांव आई थीं, लेकिन सुधांशु जैसा सोच रहा था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ था। हां, गांव के लोगों में जरूर हंसी-मजाक होने लगा था कि लक्ष्मी आते तो देखी है, मगर इस तरह छप्पर फाड़कर नहीं आते नहीं देखी।

शादी के बाद लौटकर दोनों अपनी-अपनी नौकरियों में बिजी हो गए थे। छुट्टियां आतीं तो एक-दो दिन की एक्स्ट्रा छुट्टी लेकर घर चले जाते। तन्वी सुधांशु के साथ जब भी गांव जाती, कहती–''बड़ा अच्छा लगता है यहां।''

''हां, दो-चार दिन। जब खेत कट जाते हैं तो सांय-सांय हवा के साथ इतनी धूल उड़ती है कि घर तो क्या आंख, नाक, मुंह सब धूल से भर जाते हैं।''

''तो क्या, मगर कितना खुलापन है! इतने पेड़ और मछलियों से भरा वह तालाब भी। मेरा वश चले तो यहां से कभी न जाऊं। थोड़े दिन नौकरी करने के बाद अपन यहीं आकर रहेंगे।''

शादी के बाद लौटकर दोनों अपनी-अपनी नौकरियों में बिजी हो गए थे। छुट्टियां आतीं तो एक-दो दिन की एक्स्ट्रा छुट्टी लेकर घर चले जाते।

एक शाम तन्वी ने आकर कहा–''कंपनी मुझे दो साल के लिए अमेरिका भेजना चाहती है।''

सुधांशु खुश हो गया–''अरे वाह! मत चूके चौहान। लेट अस सेलिब्रेट!''

''मगर तुम यहां अकेले कैसे रहोगे? मेरा भी वहां मन नहीं लगेगा। तुम भी चलो।''

''मगर कैसे? नौकरी छोड़कर तो जाना ठीक नहीं। तुम चलो। चांस मिस करना ठीक नहीं है। मैं वहां नौकरी ढूंढ़ना शुरू करता हूं। कोशिश करूंगा कि जल्दी से जल्दी मैं भी आ जाऊं।''

तन्वी के जाने के बाद सुधांशु सचमुच अकेला रह गया। उसकी समझ में नहीं आता था कि शादी से पहले वह अकेला कैसे रहता था। तन्वी से पहले की जिंदगी के बारे में सोचने की कोशिश करता तो कुछ याद न आता। इस बीच में एकाएक उसके पिता चल बसे थे। गांव से मम्मी को अब अपने साथ लाना जरूरी हो गया था। उसने तो तन्वी की मां से भी कहा था कि वह भी उसके साथ चलें, मगर उन्होंने कहा था कि यहां इतने मकान, बाग-बगीचे हैं, उन्हें छोड़कर कैसे जाएं।

एक सवेरे जब सुधांशु ऑफिस के लिए निकल रहा था तो तन्वी का फोन आया था। सुधांशु ने पूछा–''क्या हुआ? सब ठीक तो है?''

''नहीं।''

''क्या बात है, इतनी सुबह-सुबह। सब ठीक तो है?''

''तुम आ सकते हो?''

''पहले बात तो बताओ।''

''नाराज तो नहीं होओगे?''

''अरे नहीं यार, जल्दी बोलो।''

''मेरी जिंदगी में कोई और है।'

''क्या मतलब?''

''आई मीन आय एम इन लव। सॉरी, बट पता ही नहीं चला कि सब कैसे हो गया।''

''अरे छोड़ो भी। मुझसे ज्यादा किसे प्यार करोगी!''

''मैं सच कह रही हूं।''

''तो मुझे क्यों बता रही हो? जो ठीक लगे वह करो।''–सुधांशु ने गुस्से से कहा। उसकी आवाज सुनकर तन्वी ने फोन काट दिया था। उसके बाद तन्वी का कई बार फोन आया था, मगर सुधांशु ने उठाया नहीं। उसने एक शाम उसकी मम्मी को फोन किया था। वे भी परेशान थीं। उन्होंने कहा था–''बेटा चलो उसके पास चलते हैं।''

''नहीं, वहां जाकर क्या होगा, अगर उसने कोई फैसला कर लिया है तो!''

सुधांशु समझ नहीं पा रहा था कि यह उसके जीवन में क्या हो गया। अगर तन्वी न जाती तो शायद ऐसा न होता, लेकिन होने को तो कहीं आने-जाने से क्या फर्क पड़ता है। कहीं भी कुछ हो सकता है। आखिर वह है कौन, जो तन्वी को इतना पसंद गया? मगर वह यह भी सोचता कि वह क्यों चिंता कर रहा है। तन्वी जाने।

फिर एक रात जब घर लौटा तो उसे एक लिफाफा मिला। डाइवोर्स के पेपर थे। उसने फौरन उन पर साइन किए और वापस भेज दिए। मम्मी को तो उसने अब तक कुछ नहीं बताया था। फिर धीरे-धीरे सबको पता चल ही गया था। मम्मी को

आज तक विश्वास नहीं होता कि तन्वी को अचानक क्या हुआ।

इन इतने दिनों में उससे कोई संपर्क भी नहीं हुआ था। और अब वह मिलना चाहती थी।

तन्वी आई तो वह मम्मी के गले से लिपट गई। फिर सुधांशु पर पहले की तरह ही अधिकार जमाती बोली–''अरे आजकल भी इतनी रात को लौटते हो?''

वह कुछ नहीं बोला...तो कहने लगी–''नाराज हो?''

''नहीं, नाराजगी की क्या बात है, सबको अपनी तरह से जीने का हक है।''

''तुम्हारी लाइफ में कोई नहीं आया।''

''नहीं, मुझे अब किसी की जरूरत नहीं।''–सुधांशु ने चाहा कि उसकी बात से कड़वाहट न झलके।

''मेरी भी नहीं?''

''नहीं।''

''मगर मुझे तो तुम्हारी जरूरत है।''

सुंधांशु कुछ न बोला तो वह कहने लगी–''पता नहीं मुझे क्या हो गया था। विवेक ने ऐसा जादू किया कि मैं सबको भूल गई, लेकिन जल्दी ही लगा कि कुछ ठीक नहीं है। प्लीज मैं फिर से तुम्हारे पास आना चाहती हूं।''

''यह कोई बात हुई कि जब चाहो चली जाओ और जब चाहे वापस आ जाओ!''

मम्मी सामने बैठकर सब सुन रही थीं, मगर कुछ कहते-कहते रुक जातीं। फिर बोलीं–''देखो तन्वी, जिंदगी ऐसे नहीं चलती कि एक पल में सब कुछ उजड़ जाए और फिर चाहो तो वैसा ही बन जाए।''

''माफी से भी कुछ नहीं बन सकता?''

''माफी कितनी सुविधा का शब्द है! इससे किसी के आंसुओं का हिसाब तो नहीं चुकाया जा सकता।''–सुधांशु नाराजगी से बोला।

तन्वी जाने लगी तो बोली–''बड़े से बड़े खेल में खिलाड़ी को सेकंड चांस दिया जा सकता है, तो मुझे क्यों नहीं?''

''काश कि जिंदगी सेकंड चांस दे सकती!''

तभी मम्मी ने कहा–''सुधांशु, क्यों जिद पर अड़ा है? है तो हमारी बेटी ही।''

सुधांशु मम्मी को देखता ही रह गया।

वे फिर बोलीं–''मकान कहीं से टूट जाए, उसमें दरार पड़ जाए, तो उसे ठीक कराते हैं कि पूरा-का-पूरा मकान ढहा देते हैं?''

उन्होंने तन्वी को रोक लिया। ●

भारत भूषण अग्रवाल

प्रसिद्ध कवि, लेखक व समालोचक भारतभूषण अग्रवाल का जन्म 3 अगस्त, 1919 को उत्तर प्रदेश के मथुरा में हुआ। वे 'तारसप्तक' (1943) में महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में सम्मिलित हुए और अपनी कविताओं तथा वक्तव्यों के लिए चर्चित हुए। 1975 में वे उच्चतर अध्ययन संस्थान, शिमला के विजिटिंग फेलो बने और मृत्युपर्यंत 'भारतीय साहित्य में देश-विभाजन' विषय पर शोध करते रहे। 23 जून, 1975 को उनका निधन हुआ। जन्मशती के अवसर पर उनकी दो कविताएं...

घन बरसो

घन बरसो
रे घन ! बरसो
रे मन ! तरसो
आ गई बूंद
आ गई याद,
छायी श्यामा
छाया प्रमाद
डूबा पग-पथ,
डूबा-दृग-पथ
फूटा अंबर
फूटा अंतर
उभरा जीवन
उभरा पानी
बिखरा पावस
बिखरा मानी
रे घन ! बरसो
रे मन ! तरसो

नव मेघ

रो रहा है आज सारा लोक बनकर यक्ष
शापित, त्रस्त, निर्वासित
कौन बनकर दूत पहुंचाए संदेशा
शांति की अलकापुरी को !
एक ही था मेघ : अब वह है कहां ?
एक ही था वह महाकवि : सो गया !
आज का यह यक्ष पर निर्भर नहीं है
उठ रही है उमड़ती वह ऊर्ध्वगामी गूंज
गूंज : जो होगी न केवल दूतिका
वह चुनौती भी बनेगी
शाप को
शाप सत्ता को !
मेघ और बिजली
रात भर रोता रहा है मेघ नभ में
नीर झर
और सारी रात तड़पी है तड़ित भी
नींद आई नहीं पल भर !
विकल, बिखरी बांह के लघु-पाश में
बांध बिजली को कहा यों मेघ ने :
'सोख लो यह नीर
मुझको मुक्ति दो,
समा जाओ प्राण के आकाश में,
ठहर जाओ
आज की हो रात सुख की नींद,
फिर जगूं मैं कल सबेरे
तप्त, निर्मम भाव से सन्नद्ध !'
तड़ित पर ठहरी कहां !
चंचला वह छूट भागी
तड़पती ही रही सारी रात,
नींद आई नहीं
और–
रात भर रोता रहा है मेघ !

सुहैब अहमद फारुकी

जन्म : 16 सितंबर, 1969 को उ. प्र. के इटावा में। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित। अनेक पत्रिकाओं में आपकी शायरी पर विशेषांक। 'हिंदी साहित्य उत्सव सम्मान', 'दिल्ली स्टार अवार्ड', डॉ. क्यू. एच. खान अवार्ड', 'कम्युनिटी पोलिसिंग अवार्ड' एवं 'गायत्री साहित्य शिरोमणि' जैसे कई प्रतिष्ठित सम्मानों से नवाजे जा चुके हैं।

गजल

हमको ऐसा गुमान होने लगा।
वक्त कुछ मेहरबान होने लगा।

दिल में किसका खयाल आया है,
खुशबू खुशबू मकान होने लगा।

उसने जुल्फें बखेर दीं अपनी,
बादलों का गुमान होने लगा।

फिर कबूतर उड़ाए हैं उसने,
फिर लो अम्न-ओ-अमान होने लगा।

उनकी नजरें बदल गईं शायद,
वक्त नामेहरबान होने लगा।

फिर वो रूठा है चांद-सा चेहरा,
फिर मिरा इम्तिहान होने लगा।

दिल नहीं है दिमाग के ताबे,
मुंतशिर खानदान होने लगा।

उम्र का कौन-सा पड़ाव है यह,
जिस्म जर्जर मकान होने लगा।

अब जमीं पर कदम नहीं टिकते,
कद मिरा आसमान होने लगा।

कोई कीमत नहीं है ईमां की,
यह भी मुफ्लिस की जान होने लगा।

आ गए दिन छड़ी पकड़ने के,
मेरा बेटा जवान होने लगा।

जब से साया उठा बुजुर्गों का,
सर से गुम सायबान होने लगा।

रूह उकता गई बदन से सुहैब
जिस्म जब से कमान होने लगा।

अनामिका अनु

फिलहाल त्रिवेंद्रम (केरल) में रहती हैं। हंस, नया ज्ञानोदय, समकालीन भारतीय साहित्य, वागार्थ, कथादेश, पाखी, बया, आजकल, परिकथा, दोआब, जानकीपुल, समालोचन, पोषम पा, शब्दांकन, हिंदीनामा, संमग्रथन, केरल ज्योति, शोध सरोवर, नवभारत टाइम्स, दैनिक भास्कर आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विधाओं में रचनाएं प्रकाशित।

दो रिक्शेवाले क्या देखते हैं

दो रिक्शे–
एक दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े हैं
सड़क सुनसान है
वीरान धड़क रहा है
दुकानों के शटर नीचे गिरे हैं
सड़क के साफ गाल पर मंदी लिपी है।

शाम को एक जत्था मजदूरों का आया
कुछ थकी औरतों ने–
अपने बच्चों को गोदी से उतार
रिक्शे पर बिठाया
और पसर गईं
रोड के सीने पर रेत-सी।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद
सब चले गए

एक बिल्ली आकर–
हरे पर्दे वाले रिक्शे पर लेट गई है
दो बिल्लियां दांतों में दबा–
एक-एक रोटी का टुकड़ा
आसपास घूम रही हैं
भूखे कुत्तों का एक उदास झुंड–
टूटी झोंपड़ी-सा पड़ा है सड़क की दूसरी तरफ
पोल पर पतिंगे फड़फड़ा रहे हैं
टिप–टिप बारिश
शहर के 'हाथ–पांव' गांव जा रहे हैं।

बल्कि सत्य लगता है। उनका कहना कि–'इस कोरोना से उपजे विश्वव्यापी लॉकडाउन से बहुत कुछ बदलेगा। इसका असर अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पर भी पड़ेगा। एक तरफ चीन, वैश्विक स्तर पर रूस और अमेरिका, विशेषकर अमेरिका के प्रभुत्व को चुनौती दे रहा है, तो दूसरी तरफ दुनिया में भारत को एक नई संभावना के रूप में देखा जा रहा है।'–यह बात पूर्णतः उचित है कि हमारे देश को पहले से कहीं ज्यादा चुनौतियों का सामना हर ओर से करना होगा। भारत को अपने सभी पड़ोसी देशों पर भी कड़ी नजर रखनी होगी। मौजूदा हालात यही बता रहे हैं कि पाकिस्तान की भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति 'कोविड-19' के बाद भी कम नहीं होगी। उसने ऐसा कोई इशारा अब तक नहीं किया है कि भारत के प्रति वह रचनात्मक और सकारात्मक नीतियां अपनाना चाहता है। लेख एकदम उचित व संतुलित विश्लेषण करता हुआ सकारात्मकता की ओर बढ़ने का इशारा करता है। इतने अच्छे लेख के लिए लेखक व संपादक, दोनों को मेरी ओर से बधाई।

हिमांशु पाहवा
पानीपत (हरियाणा)

जून के अंक में अजय पोहनकर का लिखा लेख–'खुद को बदलना होगा', वाकई में एक अलग किस्म की बात कह गया, जो कि आज के दौर में हम सबके लिए बहुत ही जरूरी और उपयोगी भी है। इस कोरोना काल ने हमें ठहरकर बहुत कुछ सोचने-समझने और बदलने का संकेत दिया है, यह बात सही है कि कई बार बुरे में भी कुछ अच्छा निकलकर आता है। इस लेख में लेखक का यह कहना कि–'मुझे लगता है कि ईश्वर ने हमें आत्म-मंथन का समय दिया है। उसने इस महामारी के माध्यम से हमें बताया है कि उससे बड़ा कोई नहीं है। हमारी दुनिया तो बस एक मिनट का खेलभर है। हमारी यह दुनिया, हमारा यह शरीर, हमारी ये उपलब्धियां, सब कुछ तुच्छ हैं। हम तो इस दुनिया में खाली हाथ आए हैं और इसी तरह खाली हाथ चले जाएंगे। ऐसे में जो यह बेशकीमती वक्त 'लॉकडाउन' के रूप में मिला है, तो इसका ज्यादा-से-ज्यादा इस्तेमाल कर लेना बेहतर है।'–यह एकदम से उचित जान पड़ता है। सभी लेखों में से यह लेख मुझे इसीलिए सबसे ज्यादा पठनीय व मननीय लगा।

हंसराज गुप्ता
अजमेर (राज.)

कादम्बिनी के इस बार के, यानी जून के अंक में छपे सभी लेखों, कविताओं, कहानियों आदि ने मेरा मन, हालांकि मोह लिया है, किंतु इसी अंक के कवर स्टोरी के एक खास लेख को पढ़ा, तो अलग किस्म की जानकारी मुझे बदली हुई राजनीति की दशा व दिशा की मिली। प्रस्तुत अंक के इस लेख–'भविष्य की राजनीति, राजनीति का भविष्य', जोकि अभय कुमार दुबेजी का लिखा है। इसमें विद्वान लेखक का कहना कि–'कोरोना महामारी के कारण पूरी दुनिया लॉकडाउन के दौर से गुजर रही है। पूरा जनजीवन इसकी गिरफ्त में है। राजनीति भी इससे अछूती नहीं रही। इसके कारण राजनीति के एक नए रूप की संभावना नजर आ रही है, हालांकि यह संभावना हकीकत में क्या रूप लेगी, यह अभी भविष्य के गर्भ में ही छिपा है।' वे कई मुद्दे जो कि विपक्षी दलों के लिए राजनीति करने का एकदम बढ़िया जरिया थे, वे कोरोना के चलते कहीं पीछे छूट गए। मेरा यह मानना है कि लेखक का इस लेख में राजनीति पर विस्तार से किया गया विश्लेषण एकदम सटीक व हर लिहाज से संकेतक सिद्ध हुआ है।

मनीष कुमार
(ईमेल से)

'कादम्बिनी' के जून अंक के सभी लेख मुझे बहुत ही उम्दा लगे। सभी एक-से-बढ़कर एक रहे। ये सभी लेख आज के समय, यानी कोरोना काल की परिस्थितियों का विशद् चित्रण रोचकता व जानकारी से करते हैं। यही नहीं ये विस्तृत वर्णन से भरपूर हैं, वहीं इस दौरान इसकी आड़ में समाज में मच रही लूट को भी अच्छे से बयां करने में सफल हैं। ऐसा ही कुछ इस अंक में विद्वान लेखक अनिल सद्गोपालजी का लिखा लेख है–'शिक्षा का लॉकडाउन, लॉकडाउन की शिक्षा'– जिसमें उन्होंने शिक्षा-व्यवस्था को लेकर जो चिंता जताई है, उससे मैं भी उतना ही सहमत हूं। उनका कहना कि–'इस लॉकडाउन ने जीवन में उथल-पुथल मचाई हुई है। कहीं जिंदगी ठप पड़ी हुई है, तो कहीं ठिठकी हुई है। इन सबके बीच कहीं-कहीं जिंदगी के लिए नए-नए अवसर भी पैदा हो रहे हैं। ऐसा ही एक क्षेत्र है–शिक्षा का। यहां ऑनलाइन शिक्षा अपने नए रूप में संभावना खोज रही है। यह कितनी कामयाब होगी, इसका जवाब आनेवाला कल देगा।' मगर दूसरी ओर इसी शिक्षा के क्षेत्र में–'लॉकडाउन के दौरान एजुकेशन-टेक कंपनियों की संख्या में तेजी से इजाफा क्यों हुआ है? कोरोना संकट में भी इन कंपनियों ने लूट का रास्ता खोज लिया।'–यह सवाल तो वाकई आज के समय में गंभीरता से विचार करने की मांग करता ही है। अभी जबकि जमीनी स्तर पर शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में लगातार और वास्तविक काम होने बाकी हैं, पर ऐसे में एजुकेशन-टेक कंपनियों को खुली छूट देना भारतीय समाज के मामले में कतई उचित नहीं हो सकता। आखिर ऐसे समय में भी इन्हें इस तरह की लूट का हक किसने दिया होगा? यह भी आज एक सवाल है। इस अंक के अन्य लेख-कविताएं भी मन को छू गए।

अंकित शर्मा
अहमदाबाद (गुजरात)

अदम्य जिजीविषा की कहानियां

मई अंक में छपी कहानी–'क्वारंटीन', पढ़ी, जोकि बहुत ही मार्मिक कहानी है। मुझे तब में और अब की हालत में एक साम्यता दिखी, जो कि क्वारंटीन को लेकर है। 'क्वारंटीन' का मतलब तब मौत होती थी, लेकिन ऐसे में भी अपना तन-मन सब कुछ भुलाकर सेवा करनेवालों की इनसानियत की यह कथा भी बहुत ही मार्मिक है। इस बार के अंक की अन्य कहानियां-लेख और कॉलम भी बहुत ही पसंद आए। आपके द्वारा 'हर बार' में जो भी कॉलम, चाहे वह 'मतांतर' हो, 'भविष्य' हो, 'चुटकुले' हों 'पुस्तक समीक्षाएं' हों या फिर 'शब्द' कॉलम, सभी बहुत रोचक व जानकारीपूर्ण होते हैं।

सुरेश शर्मा
फरीदाबाद (हरियाणा)

'कादम्बिनी' का मई अंक हर लिहाज से बहुत ही जानकारीपूर्ण व पठनीय है। मैं 'कादम्बिनी' के हर नए आनेवाले अंक की बहुत ही बेसब्री से प्रतीक्षा करता हूं और नया अंक आते ही पूरा बहुत ही चाव से पढ़ता भी हूं, इतना ही नहीं अब तो मेरी मित्र-मंडली के मेरे अन्य साथी भी 'कादम्बिनी' पढ़ते हैं, क्योंकि यह है ही इतनी ज्यादा जानकारीपूर्ण और पठनीय व रोचक की कोई भी पढ़े बिना ना रह पाए। इस अंक में प्रकाशित कई लेख व कहानियां मुझे बहुत ही अच्छे लगे।

मोहन यादव
दिल्ली

मई की 'कादम्बिनी' में वैसे तो मुझे सभी सामग्री अच्छी लगी, पर इस बार की कविताएं आजकल के निराशाजनक व अवसादग्रस्त माहौल में जीवन के प्रति नया उत्साह व उमंग पैदा करती हुई लगीं। कविता चाहे वह 'हम तुम्हें मरने न देंगे'–गोपाल दास नीरज की हो, या फिर सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता–'सूरज को डूबने नहीं दूंगा' सभी कविताएं बहुत ही अच्छी रहीं।

अजय सिंह
देहरादून (उत्तराखंड)

भूपेन खख्खर के लिए सत्य नहीं, सौंदर्य ईश्वर था

भूपेन खख्खर, एक अंतरंग संस्मरण

लेखक : सुधीर चंद्र
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली; मूल्य : 999 रुपये

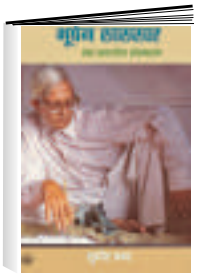

रवींद्र त्रिपाठी

भूपेन खख्खर भारत के उन पेंटरों या कलाकारों में रहे, जिन्होंने आधुनिक भारतीय कला को नया चेहरा दिया। कइयों को अतिशयोक्ति लग सकता है, अगर कहा जाए कि भूपेन ने आधुनिक भारतीय कला को भी आधुनिक बनाया। अगर यह अतिश्योक्ति है तो भी इसमें सच्चाई का एक गहरा अंश है। कई बार अतिशयोक्तियों के माध्यम से ही हम सच्चाई के उस पहलू तक पहुंच पाते हैं, जो सामने होते भी निगाहों से ओझल रहता है।

क्या थी भूपेन की आधुनिक आधुनिकता? इसे समझने के लिए इतिहासकार और कला-रसिक सुधीर चंद्र की पुस्तक 'भूपेन खख्खर : एक अंतरंग संस्मरण' पढ़नी चाहिए। रजा फाउंडेशन के सौजन्य से छपी यह पुस्तक संस्मरणात्क है, लेकिन इसमें वे अंतर्दृष्टियां भी हैं, जिनके माध्यम से आप भूपेन की सर्जनात्मकता के विविध आयामों को भी जानते हैं और उनकी कलाकर्म की बारीकियों को भी। भूपेन पेंटर होने के साथ कहानीकार और नाटककार तो थे ही, बेहद मजाकिया इंसान भी थे। दोस्तों, परिचितों (और अपरिचितों से भी) के सामने और साथ इस तरह से मजाक करते थे कि सामने वाला उलझन में पड़ जाय। आखिर उस आदमी को आप क्या कहेंगे, जो यह कहता है कि सुबह-सुबह भगवान कृष्ण उसे आकर बताते हैं कि क्या बनाया जाय और कैसे बनाया जाय। ट्रेन में यात्रा करते समय भूपेन बड़ी गंभीरता से अपने सहयात्रियों को बताते थे कि वे एक स्मगलर हैं और सोने की बिस्कुटें इधर-उधर करते हैं। कहानीकार तो थे ही, पर मनगढ़ंत किस्से सुनाने में भी उनका कोई मुकाबला नहीं था।

भूपने खख्खर समलैंगिक थे, तो यह बहुत लोग जानते हैं। उनकी पेंटिंगों में भी इसकी छवियां हैं। लेकिन भूपेन सिर्फ वही नहीं थे। उनकी पेंटिंगों में कई ऐसे पक्ष भी आए हैं, जो जीवन के दूसरे पहलुओं से भी जुड़ते हैं। मिसाल के लिए सुधीर दो खास पेंटिंगों की बात करते हैं। पहले 'मुक्तिवाहिनी सोल्जर' की। यह पेंटिंग देश की (किसी भी देश की) स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले सैनिक की है। अमूमन इस तरह की पेंटिंग से अपेक्षा की जाती है कि इसमें सैनिक की शौर्यगाथा दिखेगी, लेकिन भूपेन वह नहीं दिखाते। वे दिखाते हैं एक ऐसे व्यक्ति को, जो लगभग भावना रहित है। शायद उदास है। उदास नहीं है तो अन्यमनस्क तो है ही। उसके हाथ में बंदूक है, लेकिन भावभंगिमा ऐसी नहीं कि युद्ध की मनोदशा में हो। वह गंजी पहने हुए हैं और उसके अगल-बगल में कुछ सैनिक भी हैं जो लड़ाई का अभ्यास जैसा कर रहे हैं। भूपेन ने अपनी इस पेंटिंग में दुनिया

मिथकों से बाहर निकलते कृष्ण कन्हाई

जननायक कृष्ण (उपन्यास)

लेखक : वीरेंद्र सारंग
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली; मूल्य : 299 रुपये

श्रीकांत सिंह

हिंदू संस्कृति मिथकों में जीना सिखाती है, लेकिन भारतीय संस्कृति के पोषक कुछ लेखक अपने पाठकों को मिथकों से बाहर निकलने की प्रेरणा देते हैं। वीरेंद्र सारंग उन्हीं लेखकों में हैं। प्रमुख हिंदू देवता कृष्ण के जननायक स्वरूप को समझना चाहते हैं तो वीरेंद्र सारंग का उपन्यास 'जननायक कृष्ण' आपको जरूर पढ़ना चाहिए। इसमें भगवान कृष्ण आपको भगवत्ता से बाहर एक असाधारण व्यक्तित्व वाला मजदूर नेता नजर आएंगे, किसान नजर आएंगे, राजनेता नजर आएंगे, एक मनुष्य नजर आएंगे, जो अपनी असाधारण युक्तियों से जीवन को आसान बनाता चलता है।

'जननायक कृष्ण' के मजदूर नेता का स्वरूप उपन्यास की इन पंक्तियों में साफ-साफ झलकता है–''मैं भगवान नहीं हूं। भगवान का प्रचार बहुत हो रहा है। मुझे भगवान मानकर लोग अनैतिक कदम मेरी आड़ में उठा रहे हैं। ...समाज में दो ही तरह के लोग हैं, एक स्वामी तो दूसरा श्रमिक। स्वामी की क्या आवश्यकता? श्रमिक आवश्यक है। स्वामी श्रमिक का शोषण करेगा तो श्रमिक एकजुट होकर खड़ा हो जाएगा विरोध में।''

दरअसल, 'जननायक कृष्ण' में महाभारत काल व कृष्ण से जुड़े मिथकों को एक नवीन दृष्टि मिली है, जिसका असली सार कृष्ण के उस जननायक रूप का है, जिसे बाकायदा राजनीति के तहत नंद व वसुदेव प्रशंसकों ने उनके बचपन से ही मिथकीय रूप दिया, ताकि कंस के खिलाफ जनता को एकजुट किया जा सके। वास्तव में, कंस असुर है, जो देवता व आर्य के चंगुल में फंसकर क्रूर व तानाशाह हो गया है। उग्रसेन नाकाबिल व कमजोर राजा हैं, जिन्हें हटाकर कंस राजा बनता है, ताकि अपनी अनार्य संस्कृति की रक्षा कर सके, जो मूलतः गोपालक व कृषक जाति है। देवता आर्य संस्कृति को बढ़ावा देना चाहते हैं जो मूलतः उपभोग की संस्कृति है। कृष्ण इन पचड़ों में न पड़कर अहिंसक कृषक समाज का विकास करते हुए आर्य व अनार्य संस्कृतियों में सामंजस्य पैदा करना चाहते हैं।

हमारे मिथक जादू व चमत्कारों से भरे पड़े हैं। लेखक कृष्ण को मिथकों व चमत्कारों से बाहर निकाल कर जननायक बना देता है।

यह उपन्यास समाज को समझने की एक दृष्टि देता है। लोकभाषा से जोड़ता है। सबसे बड़ी बात यह कि भरपूर मनोरंजन करते हुए उस दुनिया में ले जाता है, जहां आप अपने अतीत में झांक सकते हैं।

भर के उन सैनिकों की पीड़ा और अवसाद को दिखाया, जो बाहर तो रणभेरियां सुनते हैं, लेकिन भीतर कई तरह की दुश्चिंताओं से घिरे रहते हैं।

सुधीर जी ने जिस दूसरी पेंटिंग पर विस्तार से बात की है वह है 'फैक्ट्री स्ट्राइक'। इसमें किसी फैक्ट्री के सामने कुछ मजदूर खड़े हैं झंडों के साथ, पर उनकी भंगिमाओं में यह भी दिख रहा है कि वे हड़ताल की वजह से थक चुके हैं और आसन्न पराजय का बोध उनके चेहरों पर तारी है। कैनवास के दूसरे हिस्से में एक खाली ट्रक है, बड़ी कार है और सूट-बूट पहने दो लोग हैं, जो शायद मैनेजमेंट से जुड़े हैं। पूरी पेंटिंग फैक्ट्री मालिकों और मजदूरों के बीच तनाव को दिखाती है। मजदूरों के शोषण को भी और उनकी बेबसी को भी। दृश्य से अधिक अदृश्य इस पेंटिंग में दिखता है।

भूपेन ने एक जगह लिखा था–''जीवन में सत्य और सौंदर्य का दमन कर दिया जाता है। मैं सत्य का प्रतिनिधित्व करता हूं। मेरा नारा है–सत्य सौंदर्य है और सौंदर्य ईश्वर–में केवल सत्य के सहारे सौंदर्य तक पहुंचना चाहता हूं।'' यहां गौर करने की बात है कि भूपेन 'सत्य बनाम सौंदर्य' की बहस में सत्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता तो दिखाते हैं, लेकिन सौंदर्य को वरीयता देते हैं। उनके लिए सत्य नहीं, सौंदर्य ईश्वर है। वे अपने को सत्य का प्रतिनिधि तो मानते थे, लेकिन सौंदर्य के लिए समर्पित थे। यह वह कलादृष्टि थी, जो भूपेन को नए ढंग का आधुनिक बनाती थी।

भूपेन के जीवन दर्शन और कला दर्शन को एक साथ समझना हो तो उनकी पेंटिंग 'यू कांट प्लीज' को याद किया जा सकता है। इसमें उन्होंने लोक में प्रचलित उस कहानी को चित्रित किया है, जिसमें एक पिता और पुत्र बाजार से खच्चर खरीदते हैं और पिता जब उस पर बैठता है, तो देखने वाले मजाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि देखो पिता मजे से खच्चर पर बैठा है और पुत्र पैदल है। जब पुत्र खच्चर पर बैठता है और पिता पैदल चलता है तो भी देखने वाले मजाक उड़ाते हैं। और जब पिता और पुत्र दोनों खच्चर पर बैठ जाते हैं तो भी देखने वाले यह कहते हैं कि देखो एक कमजोर जानवर पर पिता और पुत्र दोनों सवार हैं। यानी, भूपेन का निष्कर्ष था कि जो आपको अच्छा लगे वह काम कीजिए। दूसरों की ज्यादा मत सुनिए।

भूपेन अपनी जीवनचर्या में भी और कला साधना में भी उस इलाके में गए थे, जिसे पारंपरिक समाज में वर्जित प्रदेश माना जाता रहा है। अभी भी। और इस वर्जित प्रदेश में जाने पर एक अलग तरह का मनोविज्ञान भी बन जाता है, जिसमें झेंप, संकोच और सामाजिक लांछन की प्रक्रियाओं से भी गुजरना पड़ता है। सुधीर चंद्र के सामने एक गहरी चुनौती थी कि कैसे इस जटिलता से निपटें। भूपेन के आंतरिक मनोविज्ञान को भी दिखाएं और उनके भीतर सदा प्रवाहित होने वाले उल्लास को भी। ये दोनों काम उन्होंने अपनी इस पुस्तक में किया है।

किताबें मिलीं

1. मिशन एवरेस्ट 1965 (संस्मरण), एम. एस. कोहली, प्रभात प्रकाशन, 694, चावड़ी बाजार, दिल्ली-110006, मूल्य : 600 रुपए

2. बिसात पर जुगनू (उपन्यास), वंदना राग, राजकमल पेपरबैक्स, 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, मूल्य : 299 रुपए

3. महानायक शिवाजी (उपन्यास), सोनाली मिश्र, सामयिक प्रकाशन, 3320-21 जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, मूल्य : 500 रुपए

4. चुका भी हूं मैं नहीं (कविता), शमशेर बहादुर सिंह, चयनकर्ता : जगत शंखधर, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, 17 जगतपुरी, दिल्ली-110051, मूल्य : 150 रुपए

5. एक सौ आठ (कहानी), तराना परवीन, राजपाल एंड सन्स, 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 110006, मूल्य : 160 रुपए

चल मेरे पिट्ठू दुनिया देखें

लेखक : कमल जोशी

प्रकाशक : समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, उत्तराखंड; मूल्य : 300 रुपये

पहाड़ी यात्राओं में जीवन की समझ

पल्लव

हिमालय की यात्राओं का इतिहास और परंपरा देखें तो मालूम होता है कि सदियों से यात्री यहां के दुर्गम पहाड़ों को देखने आते रहे हैं। समझने की बात यह है कि यात्राओं का उद्देश्य धार्मिक पुण्य या प्राकृतिक सुषमा का अवलोकन ही नहीं होता। जैसे प्रेम को स्वयं एक पुरुषार्थ माना गया है, ठीक वैसे ही यात्रा करना भी जीवन का एक पुरुषार्थ समझना अनुचित न होगा। उत्तराखंड के निवासी फोटोग्राफर और सामाजिक कार्यकर्ता कमल जोशी ने युवावस्था से ही अनेक यात्रा अभियानों में भागीदारी की थी। वे बचपन से दमा के मरीज थे, लेकिन अपने रोग को नियंत्रित करने का जो रास्ता उन्होंने चुना, वह यात्राओं का था। 2017 में उनके आकस्मिक निधन के बाद उनके मित्रों ने उनके यात्रा वृत्तांतों को एक जगह इकट्ठा कर उनकी पहली पुस्तक का प्रकाशन करवाया–चल मेरे पिट्ठू दुनिया देखें। इसमें उनके द्वारा की गई अनेक छोटी-बड़ी यात्राओं के विवरण हैं। कमल जोशी के यात्रा वृत्तांतों की पहली विशेषता है सादगी और सच्चाई से जीवन का अवलोकन। वे अपनी यात्राओं में प्राकृतिक सुषमा और वसुंधरा के वैभव पर मुग्धकारी टिप्पणियां नहीं करते, अपितु इन सुरम्य और दुर्गम स्थानों पर रहने वाले नितांत मामूली लोगों के जीवन को देखने-समझने की भरसक कोशिश करते हैं। पुस्तक में 'असकोट-आराकोट अभियान', 'दारमा-व्यास घाटी के मुश्किल सिन ला दर्रे की चढ़ाई', 'गढ़वाल के दुर्गम और बीहड़ चरागाहों-शिखरों की यात्रा' जैसे अध्याय बेहतर बन पड़े हैं। वहीं अनेक यात्राओं में मिले लोगों के संस्मरण भी इन्हें पठनीय बनाते हैं।

पुस्तक का प्रारंभ कुमाऊं का सीमांत व्यास चौंदास-दारमा के समीप छोटा कैलास की यात्रा से हुआ है। 1986 में हुई इस कठिन और लंबी यात्रा का विस्तृत विवरण जोशी की पर्यवेक्षण क्षमता का उदाहरण है। कुछ अध्याय संस्मरण और रेखाचित्र हैं, जिन्हें यात्राओं के रूप में तो नहीं पढ़ा जा सकता, यद्यपि इनकी तरल संवेदना इनमें श्रेष्ठ कथेतर लेखन का अनुभव करवाती है। संभव है यह पुस्तक कमल जोशी का सब कुछ लिखा ही हो, जिसमें इन रचनाओं को छोड़ देना मुश्किल होता। बहरहाल, पुस्तक में अंकित यात्राओं को पढ़ते हुए लगता है कि इन्हें और पहले प्रकाशित हो जाना चाहिए था। तब भी हमारे अभी-अभी के इतिहास में दर्ज हो चुके अनेक प्रसंग और मोहक छवियों को यहां पढ़ना सुखद है।

रहीम के जीवन के कुछ छुए–अनछुए पहलू

अरुण कुमार जैमिनि

पिछले चार-पांच महीनों से मुझे रहीम बार-बार याद आ रहे हैं। और याद आ रहा है उनका प्रसिद्ध दोहा–'रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर, जब नीके दिन आइहैं बनत न लगिहैं देर।' इसके याद आने की वजह है–कोरोनाकाल। कोरोना और लॉकडाउन ने सबको चुपचाप घर पर बैठा दिया है। जब तक इस वायरस की वैक्सीन नहीं आ जाती, तब तक चुप बैठने के अलावा और चारा क्या है? ऐसे माहौल में आजकल नीति और ज्ञान की बातें करते जहां-तहां नव-दार्शनिकों के दर्शन हो जाते हैं। लेकिन बात जब नीतिपरक ज्ञान की हो तो रहीम बरबस ही याद आ जाते हैं। रहीम के नीतिपरक दोहे जितने उनके जीवनकाल में प्रासंगिक थे, उससे कहीं ज्यादा आज हैं। रहीम तलवार के धनी थे और कलम के भी। दानवीर ऐसे कि उनकी दानवीरता के किस्से आज भी बड़े चाव से सुने और सुनाए जाते हैं।

हाल ही में रहीम पर एक पुस्तक आई है– 'अब्दुर्रहीम खानेखाना : काव्य-सौंदर्य और सार्थकता।' इस पुस्तक के अपनी ओर ध्यान खींचने की दो वजह हैं। एक–रहीम, दूसरी–इस पुस्तक के संपादक हरीश त्रिवेदी। हरीशजी विश्व साहित्य के प्रसिद्ध अध्येता हैं। यह उनके नाम की विश्वसनीयता है कि वे जिस काम से जुड़ते हैं, वह काम बड़ा होता है। इसलिए जब इस पुस्तक पर संपादक के रूप में उनका नाम देखा तो सहज ही यह उम्मीद जगी कि इसमें रहीम पर कुछ अलग और विशेष होगा। पुस्तक पढ़ने के बाद यह भरोसा और मजबूत हुआ है।

अब्दुर्रहीम खानेखाना : काव्य-सौंदर्य और सार्थकता

संपादक : हरीश त्रिवेदी
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002;
मूल्य : 495 रुपये

यह पुस्तक 'निजामुद्दीन शहरी नवीनीकरण पहल' परियोजना का हिस्सा है। इंटरग्लोबल फाउंडेशन और आगा खान ट्रस्ट फॉर कल्चर ने इसे वाणी प्रकाशन के सहयोग से प्रकाशित किया है। पुस्तक में तीन खंड हैं। पहले खंड में रहीम के जीवन के विविध पक्षों पर लेख हैं। दूसरे में रहीम की काव्य-कृतियों की शब्दार्थ सहित व्याख्या है। तीसरे में बेगम के मकबरे के निर्माण एवं पुनरुद्धार पर जानकारीपरक लेख है।

पुस्तक में रामचंद्र शुक्ल से लेकर नामवर सिंह, सुधीश पचौरी, अनामिका, प्रताप कुमार मिश्र, हरीश त्रिवेदी और दीपा गुप्ता आदि के लेख हैं। इन लेखों में रहीम के व्यक्तित्व और कृतित्त्व की महत्त्वपूर्ण जानकारी है। चाहे रहीम के काव्य में आईं स्त्रियां हों या जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सभी इसमें जगह पाते हैं। रहीम ने सिर्फ अवधी और ब्रज में ही नहीं लिखा, उन्होंने संस्कृत को भी साधा और उसमें रचना की। मुगलकालीन फारसी तो उनकी रगों में बहती ही थी। संक्षेप में यह पुस्तक रहीम के जीवन और काव्य के कई अनछुए पहलुओं पर रोशनी डालती है।

काबिलेगौर कुछ और

मानव, मानवीय गरिमा और विचारक

अकुजै

नंदकिशोर आचार्य बड़े रचनाकार हैं। सिर्फ इसलिए नहीं कि ये अज्ञेय के 'चौथा सप्तक' के कवि रहे हैं। नंदकिशोरजी यशस्वी नाटककार हैं। समालोचक हैं। इसके अलावा शिक्षा, राजनीति, आर्थिक चिंतन से लेकर संस्कृति और दर्शन पर इनकी समान और निर्बाध गति है। इनकी यह खासियत है कि ये गूढ़ से गूढ़ विषय को भी सहजता और सरल ढंग से अपनी कवित्तमय शैली से कहते चलते हैं। पुस्तक 'आधुनिक विचारक' इसकी साक्षी है। इस पुस्तक में दार्शनिक विचारों के क्रमिक विकास को बहुत सहज ढंग से रखा गया है। मानव और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा इस पुस्तक की चिंता का मूल केंद्र है। इसमें लेखक सफल भी रहे हैं। यह एक महत्त्वचपूर्ण पुस्तक है।

आधुनिक विचारक, लेखक : नंदकिशोर आचार्य, प्रकाशक : वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर-334003; मूल्य : 120 रुपये

मुखौटे के भीतर का चेहरा

शैल माथुर

फ्रेंच लेखिका आमेली नोतों फ्रेंच ने अपना पहला उपन्यास 'हाइजीन एंड द असैसिन' महज 26 साल की उम्र में लिखा था। इसी का हिंदी संस्करण 'एक अधूरा उपन्यास' नाम से राजपाल एंड संस ने छापा है। उपन्यास के मुख्य पात्र प्रेतेक्सता ताश नाम का प्रसिद्ध लेखक है। 83 की उम्र में उसे पता चलता है कि वह मरने वाला है। इसके बाद उसके इंटरव्यू के लिए पत्रकारों की कतार लग जाती है। बातचीत में उसके स्वभाव से जुड़ी ऐसी जानकारियां मिलती हैं, जो लोगों को अब तक मालूम नहीं थीं। उसका एक उपन्यास भी अधूरा रह जाता है। लगभग पूरे उपन्यास में बातचीत ही है। कहानी दिलचस्प है, मगर उपन्यास के बजाय नाटक अधिक लगता है।

एक अधूरा उपन्यास (उपन्यास), लेखिका : आमेली नोतों, प्रकाशक : राजपाल एंड संस, 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली; मूल्य : 250 रुपये

एक मजदूर आंदोलन की दास्तां

अमित कुमार

मजदूर आंदोलन पर बहुत कुछ लिखा गया है, फिर भी काफी कुछ अनकहा रह गया है। उस कहे-अनकहे को कहने की कोशिश जयनंदन ने इस उपन्यास में की है। दरअसल, मजदूर आंदोलन की कमान जिन हाथों में होती है, वही मालिक की जुबान बोलने लगते हैं। मजदूरों की बेहतरी के लिए काम करते-करते वे उनके शोषण में हिस्सेदारी निभाने लगते हैं, लेकिन इन्हीं में से कुछ लोग निकलते हैं, जो मजदूर नेताओं की पूरी छवि को ही बदल देते हैं। इस उपन्यास का नायक अजीत उनमें से ही है। अजीत का चरित्र इस रचना को एक अलग ही आयाम देता है। उपन्यास में लेखक के देखे-भोगे यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

रहमतों की बारिश (उपन्यास) , लेखक : जयनंदन, प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, जटवाडा, 3320-21, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली; मू. : 595 रु.

अनुराधा

किताब

किताबों की दुनिया
जिल्द के भीतर
बैठी है
गहरा उन्माद और रोचकता लिए।

सैकड़ों रंग के
किस्से-कहानियों,
भूत, वर्तमान और भविष्य की
दंतकथाओं से
भरा-पूरा है पृष्ठ।

लिखा मिथकों के इतिहास में,
नीति ज्ञान दिया
वर्षों से महाभारत ने,
न रहा अछूता रामायण-प्रसंग
रावण की कुदृष्टि से
नष्ट हुई लंका!

अनगिनत संदर्भ लिखे
पुरातन-वर्तमान किताबों में
जहां छुपा है सार
मानव जीवन का।

नैतिकता, सत्य और सदाचार का
लेखा-जोखा
ज्ञान की एक पोथी से
मिलता मानव को इसी जन्म में।

सच ही तो है!
बुरा करोगे, बुरा बनोगे,

सभी चित्रांकन : सुदर्शन मल्लिक

नेहा त्रिपाठी

मैंने उसे देखा

मैंने उसे
मूक होकर
सहते देखा,
जिम्मेदारियों तले
दबते देखा,
हिम-सा उसे
पिघलते देखा,

अधरों के पीछे
छिपाते
कष्टों को देखा,
उसे
पग-पग
चलते देखा,
ख्वाबों की पोटली

कंधों पर
उठाते देखा,
और
अंततः उसे
इन्हीं सब के नीचे
कुचलते देखा!

सत्यम सीमा सत्यार्थी

मैं सुनाऊंगा तुम्हें

मैं सुनाऊंगा अपनी मौत के किस्से तुम्हें,
उम्र के उस मोड़ पर,
जब तुममें मैं खुद को देखने लगूंगा ,
मैं तुम्हें बताऊंगा कि संवेदनशीलता के उस पार जाते हुए,
मैंने रोते हुए लोगों को कैसे आग के हवाले कर दिया।
मैंने देखा अबलाओं की इज्जत लूटने वाले रसूखदार लोगों को,
और फिर मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं,
और खो गया हास्य और व्यंग्य की दुनिया में।
मैंने भावनाओं का व्यापारी बनकर बेचा एक बच्ची के दर्द को,
जो कि अपने बचपने में ब्याही गई थी ।
मैंने आत्महत्या करते हुए किसानों और
मरते हुए मजदूरों को देखा।
मैंने उनकी पीड़ा में देखा अपना स्वार्थ,
मैंने उनकी पीड़ा से बनाई सत्ता के विरुद्ध शराब,
और उसे छिड़क डाला मृतकों के टीले पर लटकी हुई लाशों पर,
वो शराब संजीवनी थी,
जिसने जीवित कर दिया उन मृतों को,
और वे करने लगे सवाल ,
सवाल हर पीड़ा, हर दर्द का जवाब मांग रहा था,
सवाल चलता रहा एक हफ्ते, दो हफ्ते,
अब लोग फिर से मरने लगे,
शराब का नशा टूट चुका था,
मृतकों के टीले का झूला फिर से सज चुका था,
और सवाल पूछने वाली आवाजें गुम हो गईं,
जवाब का इंतजार किए बिना।
मैं तुम्हें सुनाऊंगा ये सब,
क्योंकि मैं भी लटका रहूंगा उस झूले पर।
इंतजार करते हुए शराब का,
जिसे अब लाने वाले तुम होंगे।

सूचना

यह स्तंभ उन प्रतिभाशाली युवा कवियों को प्रोत्साहित करने के लिए है, जिनकी रचनाएं अच्छी होने के बावजूद अभी तक उचित मंच नहीं पा सकी हैं। 35 वर्ष तक की उम्र के ऐसे सभी रचनाकारों का इस स्तंभ में स्वागत है।

संपादक

क्या सूचनाओं की अति ने हमारी संवेदनाओं को कमजोर किया है?

पक्ष : हां

मेरा मानना है कि 'हां' सूचनाओं की अति ने हमारी संवेदनाओं को कमजोर किया है, क्योंकि सूचनाओं का जाल इतना ज्यादा और इतना तेज फैलता जाता है कि उसके सामने निश्चित ही संवेदनाएं कमजोर हो रही हैं। वे सूचनाएं चाहे किसी भी क्षेत्र से ताल्लुक रखती हैं, पर वे मानवात्र की संवेदनाओं को कमजोर करती ही हैं। अगर देखा जाए तो पहले के जमाने में जब सूचनाओं की इतनी अति न थी, तब हमारी संवेदनाएं भी कमजोर नहीं थीं, यानी हम काफी हद तक ज्यादातर संवेदनशील ही रहे, मगर सूचनाओं की अति जैसे-जैसे बढ़ती गई, हमारी संवेदनाएं कमजोर होती गई हैं।

सूचना का आदान-प्रदान, सूचना व संचार के तमाम माध्यमों के चलते हर किसी की पहुंच में आसानी से होना, और सूचना-तंत्र का बढ़ते जाना, उसका अपने विस्तृत रूप में फैलना आदि बातें निश्चित ही मानवीय संवेदनाओं पर अपना अच्छा-बुरा असर डालती ही हैं। यह बात पूरी तरह से ठीक है कि सूचना लेना और सूचना पाना आदमी का आम स्वभाव है, और दिनोदिन सूचनाओं का विस्तार बढ़ता ही जा रहा है। हमारी संवेदनाओं के कमजोर होने का चक्र भी साथ-साथ बढ़ रहा है।

रितिका गुप्ता
डब्ल्यू जेड ए-25बी, (नियर तिकोना पार्क)
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

विपक्ष : नहीं

मनुष्य का हमेशा से यह स्वभाव रहा है कि वह हर क्षेत्र से संबंधित सूचनाएं किसी भी तरह से और जल्दी से पा लेना चाहता है और यह भी कि जिस तरह से मनुष्य के जीवन में रोटी-कपड़ा और मकान प्राथमिक आवश्यकताओं में शामिल हैं। ठीक उसी तरह मनुष्य 'सूचनाओं' पर भी निर्भर रहता है। संवेदनाओं से ओत-प्रोत सूचनाएं मनुष्य को झंकृत कर देती हैं। ऐसे में ज्यादातर संवेदनाओं से हम सभी अपने को जुड़ा हुआ पाते हैं। किन्हीं भी संवेदनाओं में सूचनाओं की अधिकता होने पर हम उस विषय पर 'मंथन' करने लगते हैं। अगर संवेदनाओं से युक्त सूचनाएं न रहें, तो मनुष्य अपने को 'वेदनारहित' महसूस करने लगेगा। वेदनाएं, जब समान रूप से एक-दूसरे से परस्पर मिलती हैं, तभी 'आत्मविभोर' जन्म लेता है। हमें नहीं लगता कि संवेदनाओं में सूचनाओं की अधिकता के कारण उसके 'अस्तित्व' पर कोई संकट है। सूचना की अधिकता संवेदनाओं में रहे, जो सदा निष्पक्ष एवं तर्क पर आधारित हो।

देवेश त्रिपाठी
ग्राम व पोस्ट–मेंहदुपार,
जिला–संत कबीर नगर-272154 (उत्तर प्रदेश)

संतुलन बनाना जरूरी

तीसरा पत्र

ज्ञान और तकनीकी विकास के फलस्वरूप जीवन का प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित हुआ है। सूचना प्रौद्योगिकी जगत भी इससे अछूता नहीं रह सका। सूचनाओं की अधिकता और तीव्रतम गति से मिलने के साथ ही हमें अपने संपूर्ण मानस, चित्त व विवेक से धैर्य और संयमपूर्वक उनका सम्यक् विश्लेषण, मूल्यांकन और प्रामाणीकरण करना चाहिए। नई सूचना प्रौद्योगिकी को कोसने के बजाय अच्छा होगा कि हम स्वयं को उसके अनुसार संयमित, विवेकी और अंकुशवान बनाएं। तकनीक तो वरदान स्वरूप ही होती है, यदि उसका उपयोग सही ढंग से मानव कल्याण, समाज के लिए किया जाए। हम सूचनाओं की बाढ़ में खुद बह न जाएं और न ही अपना मानसिक संतुलन खोएं, तभी सही मायने में हम विकसित सूचना तकनीक के साथ संवेदनाओं को जीवित रख पाएंगे।

अर्विका पटेल
एस बी 101/बी-14,
हुडको प्लेस एक्सटेंशन, एंड्रयूजगंज, नई दिल्ली-110049

क्या अपनी बात को स्थापित करने के लिए भाषा का अमर्यादित होना जरूरी है?

नया विषय

कहा जाता है कि तलवार का घाव भर जाता है, लेकिन बोली का नहीं। आजकल जीवन के हर क्षेत्र में लोग भाषा का संयम खोते जा रहे हैं। अपनी बात को स्थापित करने के लिए अमर्यादित भाषा का प्रयोग करना कहां तक उचित है? लगता है–जैसे भाषा का इस्तेमाल एक हथियार के रूप में होने लगा है। यह कहां तक उचित है?

अपनी राय हमें 200 शब्दों में **20 जुलाई, 2020** तक भेज दें। इसके बाद मिले पत्रों को हम शामिल नहीं कर पाएंगे। उत्तर इस पते पर भेजिए–**मतांतर,**
संपादक : कादम्बिनी,
हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड (एच एम वी एल),
आकृति बिल्डिंग,फर्स्ट फलोर, सी-164, सेक्टर-63,
नोएडा, जिला-गौतमबुद्ध नगर-201301

यह एकतरफा मामला नहीं है

विशेषज्ञ की राय

ऐसे सवाल का 'हां' या 'ना' में जवाब उतना सरल है नहीं जितना पहली नजर में लगता है, क्योंकि सूचनाओं के जाहिर तौर पर हुए हालिया विस्फोट के बरक्स संवेदनाओं में कमी-बेशी का कोई सूचकांक उपलब्ध नहीं है, गोकि किसी खबर में संख्या या खबर की बारंबारता से निश्चय ही हमारी संवेदना प्रभावित होती है।

रविकांत

मिसाल के तौर पर हमारी आबादी बड़ी है, तो कोरोना महामारी के संक्रमण या मौत के जो आंकड़े यूरोप के नागरिकों पर असर डालेंगे वही यहां उतने असरकारी नहीं होंगे; वैसे ही जैसे कि कितनी बड़ी अर्थव्यवस्था कौन-सी है, इसके मानदंड को बनानेवाले शून्यों की तादाद विकसित व विकासशील देशों के लिए साफ तौर पर अलग-अलग होगी, और उसी हिसाब से बजट आदि बनते हैं, और हमारी अपेक्षाएं और संवेदनाएं भी तदनुरूप तय होती हैं। यहां मसला यह भी है कि हम किस समय से किस समय को तोल रहे हैं?

यानी एक निष्कर्ष तो यह कि संवेदनाएं देशकाल-सापेक्ष होती हैं। दिलचस्प है जानना कि सूचना की बाढ़ से पैदा हुए उपभोक्ता संकट—क्या खरीदें क्या नहीं—वाला विवाद पिछली सदी में ही, बाजार-विश्लेषकों के बीच पैदा हो गया था, लेकिन मौजूदा तुलना सूचना-प्रौद्योगिकी के आने और खास तौर पर डेटा के डिजिटल संरक्षण और सोशल मीडिया की लोकप्रियता के बाद ही सुसंगत होनी चाहिए। ऐसा इसलिए कि हर इनसान, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या नहीं, अपने मोबाइल के जरिये अब न सिर्फ सूचना पैदा कर सकता है, बल्कि उन्हें जस-का-तस या उनके तरह-तरह के पैकेज बनाकर बांट भी सकता है। उसके द्वारा किए गए चटकाव (क्लिक), विचरण (नैविगेशन), पसंद-नापसंद (लाइक), वह किसी पृष्ठ पर कितने समय तक ठहरा—ये सब इतने विशाल आंकड़े हैं, जिन्हें इनसान न तो इकट्ठा कर सकता है, न ही विश्लेषित। यानी अंतर्जाल (व्हाट्सऐप, ट्विटर, एफबी, इंस्टा, यूट्यूब, आदि) पर अपनी संवेदनाओं की छाप हम ईमोजी या दूसरे नेट-प्रतीकों के जरिये छोड़ते चलते हैं जो सूचनाओं के सघन बादलों में जमा होती रहती है, जिसे लगातार बॉट का इस्तेमाल कर कृत्रिम बुद्धि के औजार लगाकर विश्लेषित भी किया जाता है, यानी दूसरा निष्कर्ष यह निकला कि सूचना की भरमार और उसके संवेदनाओं पर असर की प्रक्रिया का मामला एकतरफा कतई नहीं है।

सूचनाओं के भंडारण और भंडार से निकालकर उनके पुनर्नियोजन के बदलते तौर-तरीकों का अपना इतिहास दिलचस्प है। पहले हमारी खास तरह की याददाश्त मजबूत थी कि हम फोन नंबर सहज याद रखते थे, या सौदा-सुलूफ के वक्त हाथ पर ही हिसाब कर लेते थे, मोबाइल और कैल्कुलेटर के बाद हमारा ये रोजाना का रियाज बदल गया। अब हम बस सर्च करते हैं, और मोबाइल खोने पर लगता है कि देह और दिमाग का एक हिस्सा गायब हो गया, याददाश्त चली गई! छपाई की तकनीक के पहले याद रखने के लिए कविता में ही सारी सूचना दी जाती थी, अब श्रव्य-द्रष्टव्य अभिव्यक्ति भी अहम है। बहस इस पर भी हो कि कल तक गुप्त रही हमारी संवेदनाएं अब एक साथ सरे-आम हैं और जेरे-निगहबानी भी।

(लेखक सीएसडीएस में मीडिया इतिहासकार हैं)

कुछ और चिट्ठियां...

यह कहना बिल्कुल सही नहीं है कि सूचनाओं की अति ने हमारी संवेदनाओं को कमजोर किया है, बल्कि सूचनाओं के बढ़ने से तो इनसान संवेदनाओं के धरातल पर पहले से कुछ मजबूत हुआ है। सूचनाएं बढ़ीं, उनका आदान-प्रदान बढ़ा। पूरे विश्व में संवेदनाओं के स्तर पर संवेदनाएं और मजबूत हुईं और मानव अधिक संवेदनशील हुआ।

मुकेश कुमार
फरीदाबाद (हरियाणा)

सवाल यह उठता है कि संवेदनाओं की अति क्या होती है? सूचनाएं तो सूचनाएं हैं उनकी अति तो मेरे खयाल से कहीं से भी नहीं हो सकती। और दूसरी बात कि अगर ऐसा है भी कि इनकी अति होने से हमारी सूचनाएं कमजोर हुईं या हो सकती हैं, तो यह कहना गलत होगा, बल्कि जैसे-जैसे सूचनाओं का विस्तार होता गया संवेदनाएं भी और ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत होती गई हैं।

नीलम शर्मा
अलीगढ़ (उ. प्र.)

आज का दौर तकनीकी का दौर है। अब सूचनाएं न सिर्फ जल्द-से-जल्द, बल्कि ज्यादा-से-ज्यादा दूर तक व अधिकतम लोगों तक बड़ी मात्रा में अनेकानेक माध्यमों द्वारा पहुंचती हैं, तो यह आसानी से संभव है कि ये समस्त सूचनाएं जो ज्यादा और जल्दी से पहुंचती हैं, वे निश्चित ही हमारी संवेदनाओं को कमजोर करती ही हैं, क्योंकि सूचनाओं की यह अति हमारी मानवीय संवेदनाओं पर कहीं-न-कहीं अपना पूरा असर डालती है। मुझे लगता है कि इनसान के जीवन में सूचनाएं उस हद तक तो ठीक हैं जहां तक वे संतुलित हैं।

अंजली सिंह
दिल्ली

मेरा मानना है कि सूचनाओं की अति से मनुष्य की संवेदनाओं पर कोई खास फर्क नहीं पड़ता, इससे फर्क नहीं पड़ता कि सूचनाओं की अति है या नहीं। संवेदनाएं इस वजह से न कमजोर होती हैं और न ही मजबूत होती हैं। संवेदनाएं तो संवेदनाएं हैं। चाहे सूचनाओं की अति हो या न हो, इससे खास फर्क नहीं पड़ता।

अनिल दुबे
कानपुर

क्या सूचनाओं की अति ने हमारी संवेदनाओं को कमजोर किया है?

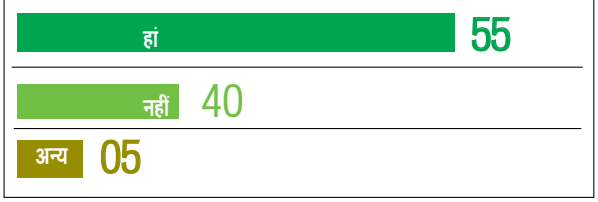

सेनिटाइज हाथों से पिज्जा खिलानेवाला प्रेम

अब सच्चा प्रेमी उसे ही माना जाएगा जो अपनी प्रेमिका को ड्रेस के साथ मैचिंग कलरवाला मास्क गिफ्ट करेगा। केवल उन्हीं का प्यार सबसे सच्चा होगा जिनके पास अलग-अलग रंगों के सबसे ज्यादा मास्क होंगे। पार्टी वियर मास्क, कैजुअल मास्क-जैसी कई वैरायिटी लिए बाजार सजा हुआ होगा

सौरभ जैन

कोरोना एक दिन 'एक था कोरोना' हो जाएगा। क्लॉकवाइज लगे लॉकडाउन और एंटी क्लॉकवाइज खुले अनलॉक का समग्र प्रभाव लंबे समय तक जीवन के सभी क्षेत्रों में देखा जाएगा।

कल्पना कीजिए कि अब पार्क में प्रेमियों के मिलने पर कैसे नजारे देखने में आएंगे? प्रायः किसी कोने की झाड़ियों में मिलने-जुलनेवाला यह वर्ग डिस्टेंसिंग मेंटेन कर पाएगा? जैसा कि मैं अनुमान लगा पा रहा हूं, प्रेमी एक बेंच पर बैठा होगा, प्रेमिका दूसरी बेंच पर। उन दोनों के बीच छह फीट का फासला होगा। 'फिजिकल डिस्टेंसिंग' के साथ मिलने पर दोनों उन बीते लम्हों को याद करेंगे, जब हवा को भी उन दोनों के बीच में से गुजरने के लिए संघर्ष करना पड़ता था।

यह मिलने-मिलाने का दौर तो इस तरह से हो भी जाएगा, परंतु जिन प्रेमी जोड़ों ने इमरान हाशमी को अपना आइडियल माना है उनका क्या होगा? इमरान हाशमी पथगामी प्रेमियों की ऐसी हाय लगेगी कि मरने पर कोरोना को पानी भी नसीब नहीं होगा।

मुझे तो भविष्य का एक दृश्य वर्तमान में ही नजर आ रहा है। प्रेम के ये दो पंछी डोमिनोज में बैठकर पिज्जा खा रहे हैं। पिज्जा खिलाने से पहले बाबू अपनी शोना के हाथों को सेनिटाइज कर रहा है। बाबू को यह सब करता देख पास ही की टेबल पर 5 साल के बच्चे को गोद में लिए बैठी एक पत्नी अपने पति से कह रही है, ''अजी! देखो न कितने क्यूट लग रहे हैं ये दोनों। काश यह कोरोना 6 साल पहले आया होता। आप भी मुझे ऐसे ही पिज्जा खिलाते।'' प्यार सिर्फ अंधा ही नहीं होता वह भूखा भी होता है!

अब जब मिलने-मिलाने का दौर, खिलाने-पिलाने का दौर होगा, तो बारी गिफ्ट लेन-देन की भी आएगी। अब सच्चा प्रेमी उसे ही माना जाएगा जो अपनी प्रेमिका को ड्रेस के साथ मैचिंग कलरवाला मास्क गिफ्ट करेगा। केवल उन्हीं का प्यार सबसे सच्चा होगा जिनके पास अलग-अलग रंगों के सबसे ज्यादा मास्क होंगे। पार्टी वियर मास्क, कैजुअल मास्क-जैसी कई वैरायिटी लिए बाजार सजा हुआ होगा। रिटर्न गिफ्ट में प्रेमिका 60 प्रतिशत अल्कोहलयुक्त सेनिटाइजर तो भेंट कर ही देगी। अब बाबू को चॉकलेट के साथ ग्लब्स भी गिफ्ट करने पड़ेंगे। ग्लब्स पहनकर शोना अपने बाबू को अपने सुरक्षित हाथों से चॉकलेट खिलाएगी। दोनों में सुरक्षित प्रेम खर्चीले स्वरूप के साथ होगा।

बात इतना होने पर खत्म नहीं होगी। सब बातों का असर बाबू, शोना की चैट पर भी देखने को मिलेगा—'मेले बाबू ने थाना थाया', की जगह अब 'मेले बाबू ने थाबुन से हाथ दोये'—ले लेगा। अच्छा ही होगा। लंबे समय से एक ही घिसी-पिटी लाइन बोलनेवाले प्रेमियों को इससे छुटकारा तो मिलेगा।

लड़कियों की पसंद-नापसंद के क्षेत्रों में भी बदलाव होंगे। अब उन्हें वो लड़का पसंद आएगा जिसके पास पासपोर्ट की बजाय ग्राम पंचायत का राशन कार्ड होगा। मेट्रो सिटी में फ्लैट की बजाय गांव में खेती-बाड़ी होगी। अब मजबूत इम्यून सिस्टम प्रेम की अनिवार्य अर्हता होगी। प्रेम प्रस्ताव पेश करते समय मेडिकल रिपोर्ट भी प्रस्तुत करनी पड़ जाएगी। •

चित्रांकन : मनोज सिन्हा

दूसरा लड्डू दिखा नहीं

सुनील सौरभ

मां, ''बेटा कल आलमारी में दो लड्डू रखे थे, अब वहां एक ही रखा हुआ है।''
बेटा, ''मां अंधेरे के कारण मुझे दूसरा लड्डू नहीं दिखाई दिया।''

उन्हें क्यों नहीं मिली
मां, ''बेटा, अच्छे से पढ़-लिख ले अच्छी बीवी मिलेगी।''
बेटा, ''मां, पिताजी इतने पढ़े-लिखे हैं, फिर उन्हें क्यों नही मिली??''

काम करने को कोई नहीं कहता
पप्पू, ''भाई मोटा होने के अपने ही फायदे हैं।''
राजू, ''फायदे कैसे?''
पप्पू, ''वह ऐसे कि जल्दबाजीवाले काम करने के लिए कोई नहीं कहता है।''

आत्मनिर्भर बनिए
हिना, ''मैं तेरी बन जाऊंगी।''
राजू, ''देखिए हमारे मत बनिए, 'आत्मनिर्भर' बनिए।''

...तो फिर शादी क्या है
पत्नी, ''मोहब्बत अगर अंधी होती है, तो फिर शादी क्या है?''
पति, ''आंखों का ऑपरेशन...!!!''

वो तो आप पर निर्भर करेगा
रिश्तेदार, ''बेटा क्या प्लानिंग है आगे की?''
पप्पू, ''वो तो आप पर निर्भर करता है।''
रिश्तेदार, ''वो कैसे?''
पप्पू, ''100 रुपये दिए तो बर्गर लाऊंगा और अगर 200 दिए तो पिज्जा...!!!''

पैक कर दो
लड़की, ''भैया एक पिज्जा देना।''
दुकानवाला, ''मैडम खाना है या पैक कर दूं।''
लड़की, ''हां खाना है, पैक कर दो।''

अपने खाने पर ध्यान दो
डॉक्टर, ''तुम्हारा वजन बहुत बढ़ रहा है। थोड़ा अपने खाने पर ध्यान दो।''
मरीज, ''डॉ. साहब, सिर्फ खाने पर ध्यान देने के कारण ही तो यह हाल है।''

...अब तक छोड़ा है क्या?
पत्नी, ''तुम कभी भी मुझे छोड़ोगे नहीं ना?''
पति, ''नहीं!''
पत्नी, ''अगर मैं मोटी हो गई तो?''
पति, ''नहीं।''
पत्नी, ''अगर मैं पागल हो गई तो?''
पति, ''पगली अब तक छोड़ा है क्या?''

डॉक्टर ये नहीं बोलते...
पप्पू, ''शुक्र है कि डॉक्टर ये नहीं बोलते...।''
गप्पू, ''क्या नहीं बोलते?''
पप्पू, ''भैया, छुट्टा नहीं है। कुछ दवाइयां और लिख दूं या एक ऑपरेशन और कर दूं...!!!''

पढ़ाई तो वो करते हैं
टीचर, ''पढ़ाई करो पढ़ाई।''
पप्पू, ''पढ़ाई तो वो करते हैं जिन्हें नौकरी करनी है, हम तो लोन लेंगे लोन।''

आपका काम अच्छा लगा
पत्नी, ''लॉकडाउन खुल जाए, तो भी मैं तुम्हें ऑफिस नहीं जाने दूंगी।''
पति, ''ऐसा क्यों पगली?''
पत्नी, ''वो मुझे अपनी कामवाली से भी ज्यादा अच्छा काम, आपका लगा।''

काढ़ा लिया क्या?
डॉक्टर, ''तुम्हें कल खांसी के लिए जो काढ़ा दिया था, तुमने लिया क्या?''
पप्पू, ''मैंने काढ़ा चखा था, फिर सोचा कि इससे अच्छी तो खांसी ही है।''

असर दिखने लगा है
गप्पू, ''हमारे घर में रामायण और महाभारत का असर दिखने लगा है।''
पप्पू, ''ऐसा क्या?''
गप्पू, ''मेरी पत्नी आजकल मुझे 'हे आर्य श्रेष्ठ' कहकर बुलाती है और कहती है, 'हे राजन आगे बढ़ें रात्रि-भोज में प्रयुक्त पात्र स्वच्छ करने का समय हो गया है'।''•

...कौन है वो?

मम्मी, ''लो खिचड़ी खा लो...।''
पप्पू, ''मुझसे नहीं खाया जाता उसके बिना।''
मम्मी (चप्पल उठाते हुए), ''कौन है वो??''
पप्पू, ''अचार।''

मैं तुमसे बड़ी हूं!

लड़का, ''मैं तुमसे प्यार करता हूं!''
लड़की, ''मैं तुमसे बड़ी हूं!''
लड़का, ''ओह सॉरी...मैं आपसे प्यार करता हूं...!!!''

सभी चित्रांकन : भुपेन मंडल

सामान्य लेकिन गंभीर समस्या

डायरिया यों तो गर्मियों में होनेवाली आम बीमारी है, लेकिन इसमें बरती जानेवाली लापरवाही गंभीर समस्या का कारण बन जाती है। कई बार यह रोग जानलेवा भी हो जाता है

डॉ. रामचंद्र सोनी

डायरिया तब होता है जब आंत की सबसे अंदरूनी परत तरल पदार्थों का अवशोषण नहीं कर पाती, या वह सक्रिय रूप से तरल पदार्थों का स्रावण करने लगती है। संक्रमण और आंतों की सूजन इसके सबसे प्रमुख कारण हैं। अधिकतर डायरिया अपने आप ठीक हो जाते हैं, लेकिन इस दौरान शरीर में जल के स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी और अन्य तरल पदार्थों का सेवन करना बहुत जरूरी है। डायरिया में दस्त लग जाते हैं, और दिन में तीन-चार बार से अधिक मल त्यागने जाना पड़ता है।

लक्षण

- पेट में दर्द होना। पेट में मरोड़ चलना।
- पेट फूलना। वजन कम होना। बुखार आना।
- शरीर में दर्द होना। अत्यधिक कमजोरी महसूस होना।
- अत्यधिक प्यास लगना। शरीर में ऊर्जा की कमी महसूस होना।
- सामान्य से कम यूरिन पास करना।
- चक्कर आना या सिर हल्का होना।

कारण

डायरिया कई कारणों से हो सकता है; जिनमें सम्मिलित है–संक्रमण। ये संक्रमण वॉयरस, बैक्टीरिया या परजीवी के द्वारा हो सकता है। ये सूक्ष्मजीव संक्रमित पानी या भोजन के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं; रोटोवॉयरस (वाइरस), सालमोनेला (बैक्टीरिया) या परजीवी (क्रिप्टोस्पोरिडियम)।

कुछ लोगों में ऐसे भोजन का सेवन करने से, जिनमें लैक्टोज या फ्रुक्टोज होता है या आर्टिफिशियल स्विटनर-जैसे सोर्बिटोल और मैनिटोल के कारण डायरिया हो सकता है। जो लोग अत्यधिक मात्रा में शराब पीते हैं, उनमें डायरिया होने का खतरा बढ़ जाता है। अल्सरेटिव कोलाइटिस, क्रोहन डिसीज, सीलिएक डिसीज या इरीटेबल बॉउल सिंड्रोम (आईबीएस) के कारण डायरिया होने का खतरा बढ़ जाता है।

कई दवाइयों का सेवन डायरिया का कारण बन सकता है, इनमें प्रमुख हैं; एंटीबॉयोटिक्स, एंटा-एसिड्स, डायबिटीज की दवाइयां आदि।

बचाव

- फिल्टर किया हुआ या उबला हुआ पानी पिएं।
- अपने घर और परिवेश को साफ-सुथरा रखें।

- अपने हाथों को नियमित रूप से साबुन और पानी से धोएं, विशेषकर खाना पकाने और खाने से पहले।
- सब्जियों और फलों को खाने और पकाने से पहले अच्छी तरह से धोएं।
- ताजे और स्वच्छ भोजन का सेवन करें। बासी भोजन और सड़े-गले फल और सब्जियां न खाएं।
- टॉयलेट इस्तेमाल करने के बाद अपने हाथों को कम-से-कम 20 सेकंड तक साबुन-पानी से अच्छी तरह रगड़कर धोएं।
- अपने बच्चों को टॉयलेट हाइजीन के गुर सिखाएं।

उपचार

अगर आपको डायरिया हो गया है, तो घर पर ही आराम करें। हल्के और सुपाच्य भोजन का सेवन करें। बार-बार दस्त होने के कारण शरीर में पानी की कमी हो सकती है, इससे बचने के लिए पानी और दूसरे तरल पदार्थों, जैसे–जूस, नारियल पानी आदि का सेवन बढ़ा दें। ओआरएस का घोल भी लें, यह दवाई की दुकान पर आसानी से उपलब्ध होता है, लेकिन अगर घरेलू उपायों से डायरिया की समस्या ठीक नहीं हो रही है, तो डॉक्टर को दिखाने में देरी न करें। विशेषकर बच्चों और बुजुर्गों में डायरिया के कारण खतरा बढ़ सकता है, इसलिए उन्हें तुरंत उपचार की जरूरत पड़ती है।

(लेखक एशियन हॉस्पिटल–फरीदाबाद में गैस्ट्रोएंट्रोलॉजी के एचओडी हैं)

इससे बचकर रहें

अतिसार या डायरिया लू और तेज गर्म हवाओं के चलने के कारण होता है। आयुर्वेद कहता है कि उचित खान-पान, संयमित जीवन और परहेज से इससे बचा जा सकता है। अगर यह फिर भी हो जाए तो यहां इसका इलाज भी है

अतिसार आंत की बीमारी है, जिसमें रोगी बार-बार पतले मल का त्याग करता है, यह प्रायः गर्मियों के दिनों में होता है जब लू या तेज गर्म हवाएं चलती हैं। इसे आधुनिक चिकित्सा में डायरिया कहते हैं। इसी को प्रवाहिका भी कहते हैं। आयुर्वेद में इसे 'पुरीषवह स्रोतस' की व्याधि कहते हैं। 'उदकवह स्रोतस' तथा 'अन्यवह स्रोतस' भी इसकी संज्ञाएं हैं। द्रवयुक्त मल अधिक निकलने से शरीर में पानी की कमी होने लगती है और इलेक्ट्रोलाइट असंतुलित हो जाते हैं, जिससे शरीर में कमजोरी, थकान तथा ऐंठन होने लगती है। बच्चों में प्रायः दांत निकलते समय बुखार तथा अतिसार के लक्षण दिखाई देते हैं। बच्चों में मिट्टी खाने के कारण भी पेट में दर्द एवं अतिसार होता है। बच्चों में होनेवाले अतिसार को बालातिसार कहा जाता है।

वैद्य एल. सी. पटेल

कारण

- दूषित एवं अधपका भोजन करना।
- दूषित तथा ज्यादा ठंडा जलपान करना।
- विषपान करना।
- भय-शोक आदि मानसिक कारण होना।
- कृमि, अर्श, तथा अजीर्ण आदि रोग होना।
- बच्चों में दांत निकलना।
- बच्चों द्वारा मिट्टी खाने के कारण अतिसार होना।

लक्षण

- रोगी द्वारा बार-बार द्रवयुक्त मल त्याग करना।
- मल–पीला-नीला या लाल रंग का होना।
- कभी-कभी मल का झागयुक्त तथा पीड़ा के साथ निकलना।
- प्यास अधिक लगना।
- मूत्र की मात्रा कम होना तथा रंग असामान्य (पीला) होना।
- जंघा, पिंडलियों में दर्द, शरीर में पीड़ा व ऐंठन होना।
- कमजोरी तथा थकान लगना।
- चक्कर आना तथा आंखों के आगे अंधेरा छाना।

चिकित्सा

- रोगी को एक या दो दिन भोजन नहीं करना चाहिए, उसके बाद मूंग की खिचड़ी खानी चाहिए और छाछ (मट्ठा) को काला नमक तथा जीरा मिलाकर पीना चाहिए।
- कच्चे केले की सब्जी खाना लाभदायक होता है।
- बकरी का दूध पीना भी लाभकारी होता है।
- कच्चे बेल के गूदे का चूर्ण एक-दो चम्मच सुबह-शाम पानी के साथ ले सकते हैं।
- बच्चों के मामले में कच्चे बेल को भूनकर उसके गूदे को खिलाना/चटाना चाहिए।
- बच्चों में दांत निकलते समय अतिसार होने पर गूलर का दूध एक-एक चम्मच सुबह-शाम ले सकते हैं।
- ओ.आर.एस. का घोल समय-समय पर या दिन में चार से पांच बार पीते रहें, जिससे शरीर में पानी की कमी न होने पाए और इलेक्ट्रोलाइट संतुलित रहे। मूत्र की मात्रा एवं रंग सामान्य न होने पर तथा त्वचा की झुर्रियां बढ़ने पर अधिक जल हानि होने के कारण तत्काल चिकित्सक से परामर्श लें।

क्या करें

मसूर की दाल, अरहर, अनार, कच्चा बेल, गूलर, कच्चा केला, लौकी, परवल, जीरा, धनिया, छाछ, बकरी का दूध आदि का सेवन करें। मूंग की खिचड़ी छाछ के साथ लेना लाभकारी होता है। हमेशा गर्म/उबले हुए पानी का ही सेवन करना चाहिए। रोगी को पूर्णतः विश्राम करना चाहिए।

क्या न करें

उड़द, मटर, कटहल, सेम, ईख रस, ककड़ी, खीरा, चना, द्राक्षा, दही, समोसा, कचौड़ी आदि का सेवन न करें। पके फलों के जूस में बर्फ मिलाकर सेवन न करें। सलाद का सेवन नहीं करना चाहिए एवं अधिक ठंडे पानी का सेवन नहीं करना चाहिए। मांस-मछली का सेवन नहीं करना चाहिए। रोगी को रात्रि जागरण नहीं करना चाहिए। दिन में नहीं सोना चाहिए।

औषधियां

संजीवनी वटी, अग्नि तुंडी वटी, जातीफलादि वटी, कुटजघन वटी, दाड़िमाष्टक चूर्ण, गंगाधर चूर्ण, कुटजारिष्ट, कर्पूरासव, विडंगासव, विजयावलेह, पूर्णचंद्रोदय रस, चिंतामणि रस, पंचामृत पर्पटी, रामबाण रस आदि औषधियों को चिकित्सक के परामर्श से ही लें।

ओ.आर.एस. बनाने की विधि

उबालकर, ठंडा किए हुए एक लिटर पानी में छह चम्मच चीनी तथा 1/2 चम्मच नमक मिलाकर घोल तैयार करना चाहिए। इसी को ओ.आर.एस. (ओरल रिहाइड्रेशन सॉल्यूशन) कहते हैं। इसका सेवन दिन में चार से पांच बार करते रहना चाहिए।

(लेखक आजमगढ़ स्थित शिवालिक आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज एवं हॉस्पिटल में एसोसिएट प्रोफेसर हैं)

... और बदलेगी दुनिया

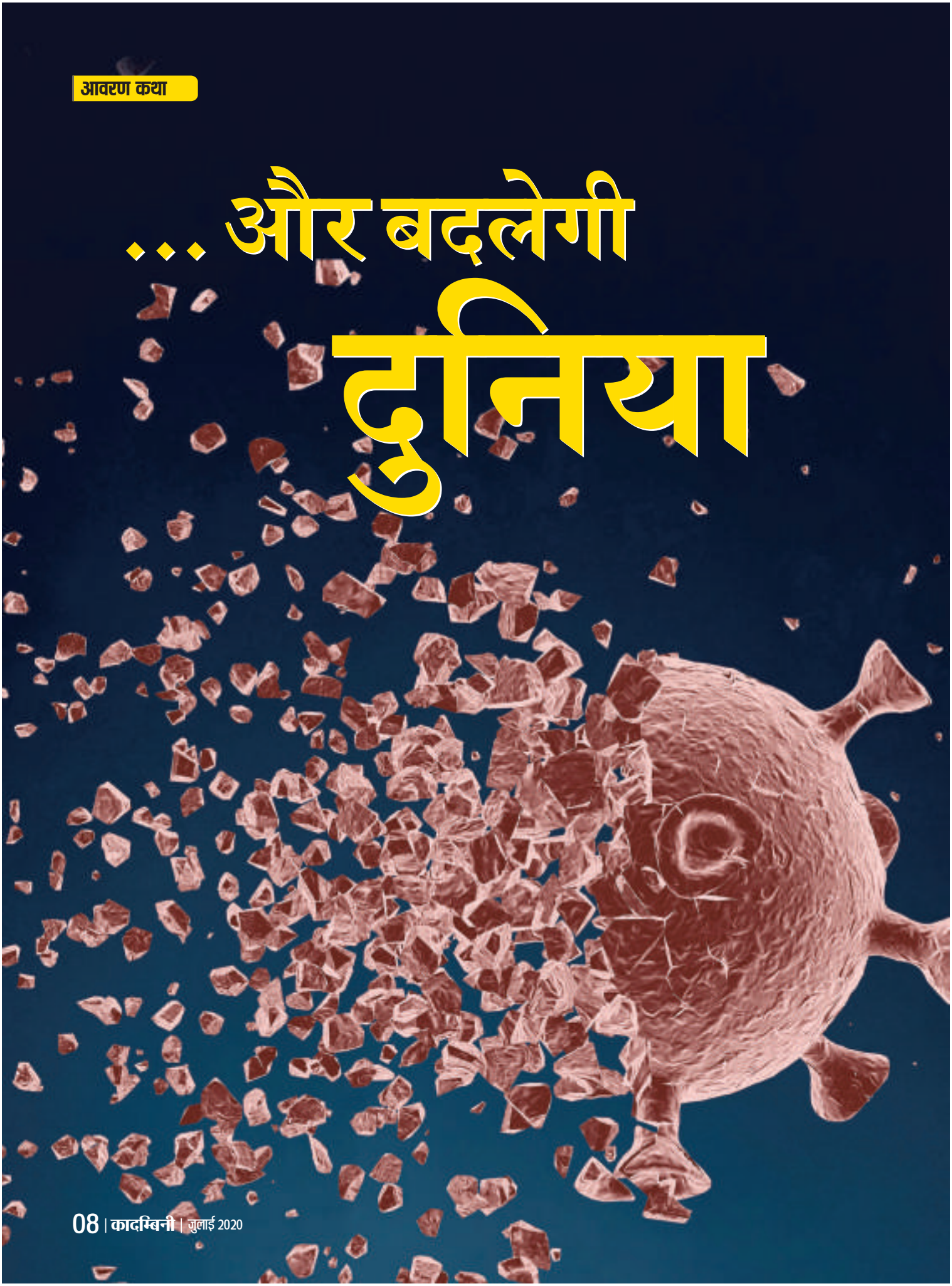

जून अंक पर आधारित वर्ग पहेली

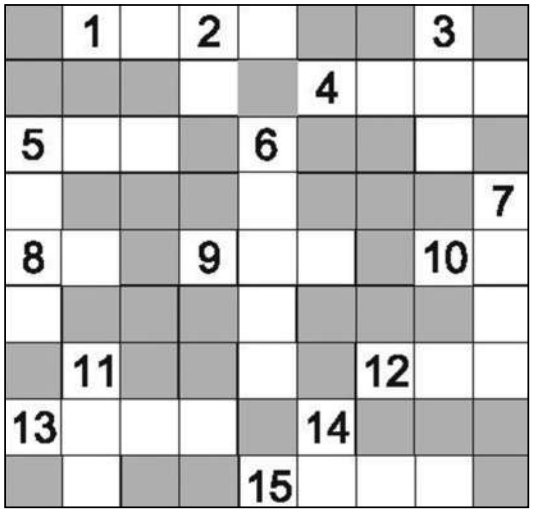

बायें से दायें

1. जाने-माने अभिनेता प्रेम चोपड़ा की मां का नाम।
4. 'कविता के वरिष्ठ नागरिक' किताब में ओम निश्चल ने कई वरिष्ठ कवियों का जिक्र किया है, उन्हीं में से एक हैं।
5. उमा शर्मा इस नृत्य की प्रसिद्ध नृत्यांगना हैं।
8. *'राधे कहिए किते छमियों मैंने कीन्ह अपराधे कीन्हें मैंने'*–ये पंक्तियां इस कवि की हैं।
9. लॉकडाउन पीरियड में गांववालों की मदद के उद्देश्य से इस जगह पर चाचा-भतीजे ने मिलकर कुआं खोद डाला, जिससे अब गांववाले अपनी प्यास बुझा रहे हैं।
10. उत्तर भारत की एक प्रमुख नदी जिसका पानी लॉकडाउन के बाद काफी साफ हो गया।
12. मनोज कुमार की पहली फिल्म (1957) जिसमें प्रेम चोपड़ा भी भूमिका निभा चुके हैं।
13. लॉकडाउन के चलते यहां के युवाओं ने चंदा करके पहाड़ी पर जोहर की खुदाई कर डाली।
15. मनु इस कालजयी कृति का पात्र है।

ऊपर से नीचे

2. श्रीकृष्ण की प्रेमिका जो उनके जाने के बाद बहुत दुखी हो गई थी।
3. महात्मा गांधी को गोली लगने के बाद उनके मुख से अंतिम शब्द यह निकले।
5. हरिनारायण इस साहित्यिक पत्रिका के संपादक हैं।
6. कवि आलोक यादव का जन्म फर्रुखाबाद जनपद में यहां हुआ था।
7. *'कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास;*
कई दिनों तक काली कुतिया सोई उसके पास।'–कविता की ये पंक्तियां किस कवि की हैं।
11. 'उनके सादा जीवन की जटिल अभिव्यक्तियां उनके काव्य चिंतन के भाष्य हैं,'–ओम निश्चल ने यह पंक्ति इस वरिष्ठ कवि के लिए कही है।
14. राकिता नंदा की मां का नाम।

मई अंक पर आधारित वर्ग पहेली का उत्तर

उत्तर भेजने का पता :
'कादम्बिनी', हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड (एच एम वीएल) आकृति बिल्डिंग, फर्स्ट फलोर, सी-164, सेक्टर-63,नोएडा, जिला-गौतमबुद्ध नगर-201301

प्रस्तुति : आर्चर कम्युनिकेशन,
ए-7, सेक्टर-55, नोएडा-201301
email :
shailmmathur@gmail.com

मई अंक पर आधारित वर्ग पहेली के पांच प्रतियोगी ये हैं–

1. सुमन परमार
दिल्ली
2. सुभद्रा शर्मा
चंडीगढ़
3. कुसुम कुमारी
बुलंदशहर (उ. प्र.)
4. सात्विक सिंह
भोपाल (म. प्र.)
5. ऋतिक भारद्वाज
देहरादून (उत्तराखंड)

वर्ग-पहेली की सही प्रविष्टियां **15 जुलाई, 2020** तक भेजनेवाले पांच प्रतियोगियों के नाम 'कादम्बिनी' में प्रकाशित किए जाएंगे। प्रतियोगियों का चयन ड्रॉ द्वारा किया जाएगा।

कब ठीक होगा स्वास्थ्य

राघवेंद्र शर्मा

मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। कोई उपाय बताइए?

नीरू विग
दिल्ली

आपकी जन्म-कुंडली वृश्चिक लग्न की है। लग्न में केतु विद्यमान है। सदैव आपका मन अशांत रहता है। स्वभाव में चिड़चिड़ापन भी रहता है। सप्तम भाव बृहस्पति के साथ राहु विद्यमान है। इस कुंडली में बुध, चंद्रमा, शुक्र तथा सूर्य अष्टम भाव में हैं। स्वास्थ्य की विभिन्न समस्याओं से आप ग्रस्त हैं। परिवार में अशांति रहती है। आप निम्न उपाय करिए, प्रभु कृपा से लाभ अवश्य मिलना चाहिए–

• सवा दस रत्ती का सच्चा मोती चांदी की अंगूठी में जड़वाकर दाहिने हाथ की कनिष्ठिका (सबसे छोटी) उंगली में धारण करें।

•सवा छह रत्ती का 'जेड' स्टोन (हरे रंग का) चांदी में पेंडंट बनवाकर किसी भी रंग के धागे में या किसी भी तरह की चेन में डालकर गले में धारण करें।

• प्रतिदिन नहाने के पानी में थोड़ा-सा गंगाजल डालकर स्नान किया करें। इसके अतिरिक्त दिन में तीन बार एक चम्मच गंगाजल पिया करें।

• प्रत्येक बुधवार के दिन प्रातः शिवलिंग पर दो खीरे चढ़ाया करें।

• प्रतिदिन प्रातः तांबे के लोटे में जल भरकर उसमें थोड़े से चावल, चीनी या गुड़ तथा रोली डालकर, सूर्य की तरफ मुंह करके जल की धार बनाकर 'ॐ सूर्याय नमः' बोलते हुए जल अर्पित कर दें।

• प्रत्येक शुक्रवार के दिन एक मुट्ठी चावल लेकर एक डिब्बे में या थैले में डालकर इकट्ठा कर लें। जब मात्रा अधिक हो जाए, तो मंदिर के पुजारी को दें या गाय को खिला दें।

मेरा पुत्र अभी तक ठीक तरह से सैटिल नहीं हो पाया है। मेरे प्रति एग्रेसिव रहता है। विदेश में सैटिल होना चाहता है। पुत्र को कोई एडिक्शन दिखाई पड़ता है। कृपया मेरी सहायता करें तथा ठीक होने के उपाय बताएं।

आर. के. शर्मा
चंडीगढ़

आपके पुत्र की जन्म-कुंडली धनु लग्न की है। इनकी जन्म-कुंडली में भाग्य स्थान के स्वामी सूर्य अष्टम भाव में विद्यमान हैं और मृत अवस्था में हैं। सप्तम व दशम भाव के स्वामी बुध सप्तम भाव में स्वराशिगत तो हैं, लेकिन वक्री अस्त तथा मृत अवस्था में हैं। अतः वांछित परिणाम नहीं दे पाएंगे। 26 दिसंबर, 2020 के उपरांत इनके जीवन में निश्चितता दिखाई देनी प्रारंभ हो जाएगी। वर्ष 2023 में इनको विदेश जाने के अवसर मिल सकते हैं। इनके लिए निम्न उपाय लाभप्रद रहेंगे–

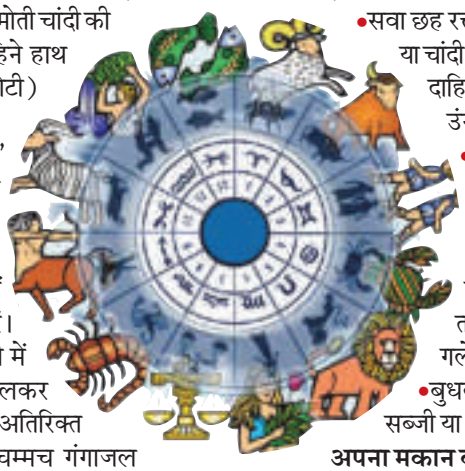

•सवा छह रत्ती के माणिक्य को सोने या चांदी की अंगूठी में जड़वाकर दाहिने हाथ की अनामिका उंगली में पहनाएं।

•सवा छह रत्ती का 'जेड' स्टोन (हरे रंग का) का चांदी में पेंडेंट बनवाकर किसी भी रंग के धागे या किसी भी तरह की चेन में डालकर गले में पहनाएं।

•बुधवार के दिन गाय को हरी सब्जी या हरा चारा खिलाएं।

अपना मकान कब होगा?

मुकेश कुमार श्रीवास्तव
कानपुर (उ.प्र.)

आपकी जन्म-कुंडली मीन लग्न की है। लग्न में सूर्य, शनि व राहु विद्यमान हैं। आप कभी भी चिंता से मुक्त नहीं हो पाएंगे। मन प्रायः अशांत रहेगा। भूमि का कारक ग्रह मंगल द्वितीय भाव में स्वराशिगत है। चतुर्थ भाव के स्वामी बुध कुंभ राशि में द्वादश भावस्थ हैं। आपकी जन्म-कुंडली में पैतृक संपत्ति मिलने का योग तो है, परंतु अपना मकान बनाने का योग नहीं है। आप ये उपाय करिए–

•सवा पांच रत्ती का पुखराज सोने की अंगूठी में जड़वाकर दाहिने हाथ की तर्जनी उंगली में धारण करें।

• सवा आठ रत्ती का मूंगा चांदी की अंगूठी में जड़वाकर दाहिने हाथ की अनामिका उंगली में धारण करें।

•प्रतिदिन प्रातः 'विष्णु सहस्त्रनाम' का पाठ किया करें।

• प्रातः तांबे के लोटे में जल भरकर उसमें थोड़े से चावल, चीनी व रोली डालकर जल की धार बनाकर सूर्य की तरफ मुंह करके 'ॐ सूर्याय नमः' का जप करते हुए, जल अर्पित कर दें।

• शनिवार के दिन सूर्यास्त के बाद पीपल के पेड़ के नीचे सरसों के तेल का दीपक जलाएं। •

अपने सवाल या समस्या हमें इस पते पर ईमेल करें

e-mail : kraghavendra1951@gmail.com

क्रम इस प्रकार रखें

1. नाम – ----------
2. जन्मतिथि – ----------
3. जन्म समय – ----------
4. जन्म स्थान – ----------
5. आपका सवाल – ----------

सूचना

कादम्बिनी के पाठकों के लिए ज्योतिष के इस स्तंभ के अंतर्गत सुप्रसिद्ध ज्योतिषी राघवेन्द्र शर्मा पाठकों की समस्याओं का समाधान करते हैं। पाठक एक बार में अपनी सिर्फ एक ही समस्या रखें।

–संपादक

इस माह के व्रत एवं त्योहार

01 जुलाई, 2020 देव शयनी एकादशी (सर्वे), 02. प्रदोष व्रत, 05. गुरु पूर्णिमा, 06. श्रावण सोमवार व्रत प्रारंभ, 08.चतुर्थी व्रत, 10. नागपंचमी, 16. कामिका एकादशी व्रत (सर्वे), 18. प्रदोष व्रत, 20. हरियाली अमावस्या, सोमोती मावस, 23.हरियाली तीज, 30. पवित्रा एकादशी व्रत (सर्वे)।

स्त्रायपक्ष

रूस में 'महाराजिन' को 'स्त्रायपक्ष' कहते हैं, जो संस्कृत के 'स्त्री' और 'पक्ष' के कितने निकट है। जैसे 'स्त्रायपक्ष' न कहकर 'स्त्री पक्ष' कहा जा रहा हो।

इब्बार रब्बी

हिंदी प्रदेशों में अमीरों के घर खाना पकानेवाली ब्राह्मण स्त्री को 'महाराजिन' और पुरुष को 'महाराज' कहते हैं। रूस में 'महाराजिन' को 'स्त्रायपक्ष' कहते हैं, जो संस्कृत के 'स्त्री' और 'पक्ष' के कितने निकट है। जैसे 'स्त्रायपक्ष' न कहकर 'स्त्री पक्ष' कहा जा रहा हो। रूस के विश्व प्रसिद्ध कथाकार फ्योदोर दोस्तोव्स्की को जार (सम्राट) के विरुद्ध षड्यंत्र करने के आरोप में जेल में डाला गया था। जेल में ईमानदार कैदियों को बाहर काम करने नहीं भेजा जाता था। उनका काम था रसोई में रोटी और शोरबा पकाना। उस जेल में चार रसोइए थे। उनमें से दो 'ओसिप' और 'सुशीलोव' दोस्तोव्स्की के अन्य छोटे-मोटे काम भी कर देते थे। सुशीलोव का नाम हमारे 'सुशील कुमार' से कितना मिलता-जुलता है, जैसे रूसी नहीं, हिंदी का नाम हो! जेल के अन्य कैदी उन्हें मजाक में रसोइया न कहकर 'स्त्रायपक्ष', यानी 'महाराजिन' कहते थे, पर वे बुरा नहीं मानते थे।

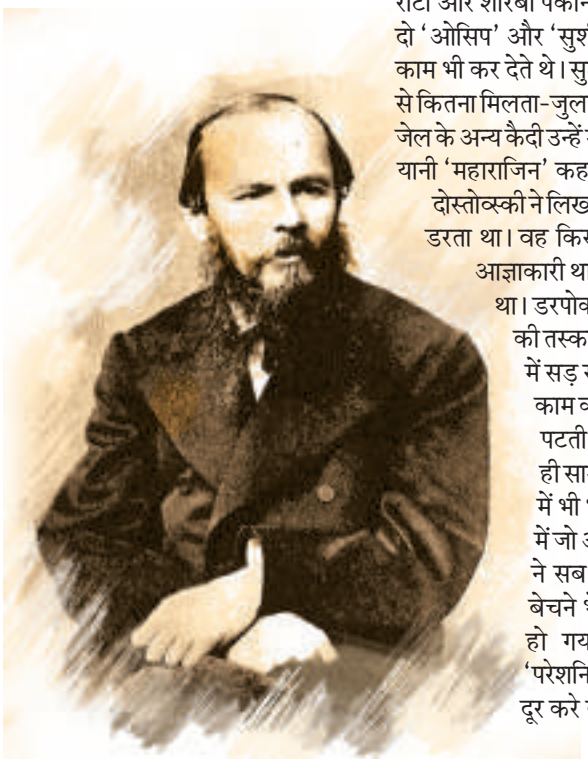

दोस्तोव्स्की ने लिखा है कि– 'ओसिप कोड़ों की मार से बहुत डरता था। वह किसी से बहस नहीं करता था और बहुत आज्ञाकारी था। कोई बड़ा खतरा मोल नहीं ले सकता था। डरपोक होने के बावजूद वह स्वयं को शराब की तस्करी से नहीं रोक पाता था, इसी कारण जेल में सड़ रहा था। वह बरसों से जेल में रसोइए का काम कर रहा था।' दोस्तोव्स्की से उसकी खूब पटती थी। केवल संस्कृत और रूसी शब्दों में ही साम्य नहीं है। भारत की तरह वहां की जेलों में भी भ्रष्टाचार का खूब बोलबाला था। रसोई में जो आटा रोज बच जाता था, उसे एक रसोइए ने सब इकट्ठा करके एक व्यक्ति को बाहर बेचने भेजा, वह पकड़ा गया और आटा जब्त हो गया। रूसी भाषा में सफाईकर्मी को 'परेशनिकी' कहते हैं; जो गंदगी, यानी 'परेशानी' दूर करे वह 'परेशनिकी'।•

चलन में...

मधु बी. जोशी

कोरोना के अखंड साम्राज्य के इस दौर में भी बादल और बरखा आए बिना नहीं रहेंगे, लेकिन इस बार उनके मायने अलग ही होंगे। परदेसी प्रियतम से लौट आने की मनुहारें, सखियों के साथ झूला झूलने की साध, भैया से विदा करवा ले जाने की गुजारिश...बस सावन के गीतों में ही मिलेंगी इस बरस। बहरहाल, बरसात की अगवानी में इस बार प्रस्तुत हैं बारिश से जुड़ी कुछ अंग्रेजी कहावतें–

It's raining cats and dogs/ buckets/pitchforks.-(मूसलाधार बरसना) : भारी/जबर्दस्त बारिश की बात कहने के लिए यह मुहावरा इस्तेमाल होता है। उदाहरणः डोंट गो आउट, इट्स रेनिंग...।

Rain or shine. (बरखा हो या धूप चमके, यह होगा/किया जाएगा): यह मुहावरा किसी बात के होने पर जोर देने के लिए कहा जाता है। उदाहरणः आइ विल सी यू एट सेवन, कम...।

It's raining men/ girls/ offers/ oportunities. -(... की झड़ी लगी है): यह मुहावरा यह बताने के लिए इस्तेमाल किया जाता है कि किन्हीं तत्वों की भरमार है, यानी वे बहुत मात्रा में उपलब्ध हैं। उदाहरणः दिस इज अ ग्रेट टाइम, इट्स रेनिंग...।

To save for a rainy day. -(आड़े वक्त के लिए संभाल/बचाकर रखना): इस मुहावरे का उपयोग यह इंगित करने के लिए किया जाता है कि धन या कोई और चीज सचमुच ही जरूरत पड़ने पर खर्चने के लिए सुरक्षित रखा जा रहा है। उदाहरणः आइ डोंट वांट टु सेव द हाउस, आइ एम सेविंग इट फॉर अ...।

Charge it to the dust and let the rain settle it. - (हम तो नहीं चुकाएंगे, कर लो जो कर सको): जब कोई कुछ चुकाना न चाहे तो इस मुहावरे का इस्तेमाल करता है। उदाहरणः दैट समोसा वाज सो बैड...चार्ज इट टु द डस्ट एंड लैट द रेन सैट्ल इट।

Right as rain.-(बिलकुल सही होना): इस मुहावरे का इस्तेमाल किसी व्यक्ति/स्थिति के एकदम सही होने की स्थिति में होता है। उदाहरणः शी वाज राइट एज रेन अबाउट द मैच बीइंग लॉस्ट।•

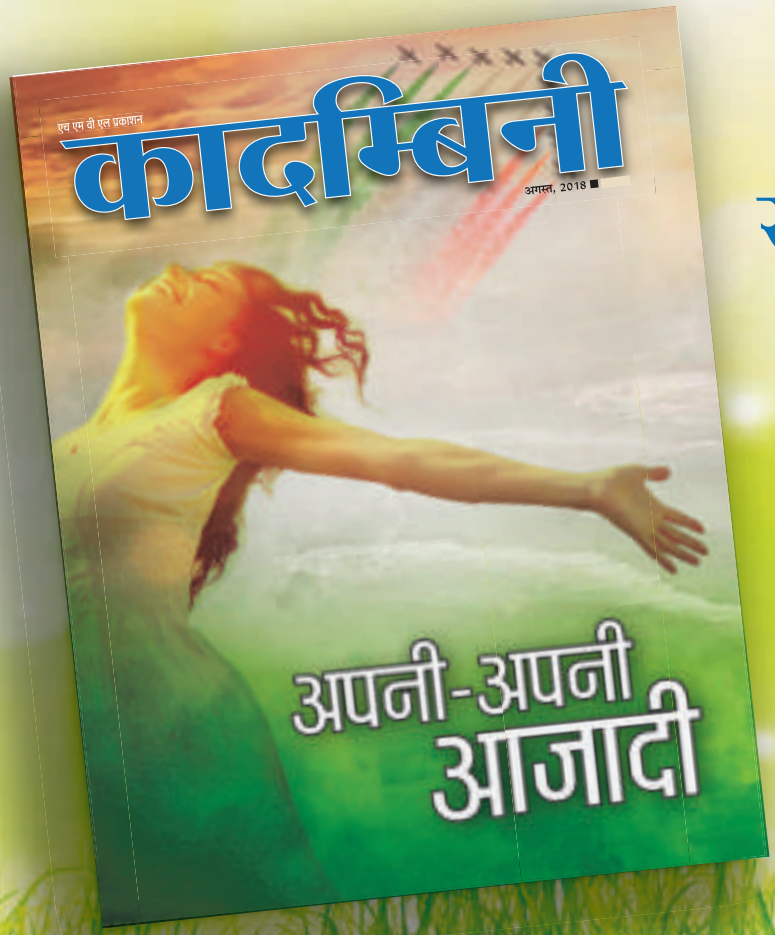

अब घर बैठे पाएं समाज, संस्कृति और प्राकृतिक सौन्दर्य के नजारे

ग्राहकों के लिए नई सुविधा : शुल्क 'हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड' के नाम से चेक द्वारा भेजें।

विदेशों में सदस्यता शुल्क
एक वर्ष ₹1,240/- में
दो वर्ष ₹2,440/- में

सब्सक्रिप्शन ऑफर
एक वर्ष : ~~मूल्य-₹360/-~~, आपके लिए ₹280/-
दो वर्ष : ~~मूल्य-₹720/-~~, आपके लिए ₹520/-

कोरियर/रजिस्टर पोस्ट द्वारा
एक वर्ष ₹715/- में
दो वर्ष ₹1,385/- में

पुराने ग्राहक अपने सब्सक्रिप्शन की समाप्ति तिथि जानने लिए **'कादम्बिनी'** के साथ भेजे गए लिफाफे को देखें।

सब्सक्राइब करने के लिए कृपया सब्सक्रिप्शन फॉर्म को भरकर दिए गए पते पर भेजें।

कादम्बिनी सब्सक्रिप्शन फॉर्म

श्री / सुश्री :.....
नाम :.....
उपनाम :.....
प्रति भेजने का पता :.....
.....
.....
शहर :.....
पिन :.....
प्रदेश :.....

ई-मेल :.....
टेलीफोन :. .....
मोबाइल : .....
चेक / ड्राफ्ट / मनीऑर्डर न : .....
'Hindustan Media Ventures Limited' के नाम से
बैंक का नाम : .....
ब्रांच :.....
तारीख : .....
हस्ताक्षर :.....

दिए गए कूपन को शुल्क के साथ इस पते पर भेजें:

सब्सक्रिप्शन सेल, एच टी मीडिया लिमिटेड,
पैसिफिक बिजनेस पार्क, फोर्थ फ्लोर (ए-401),
साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया,
जिला - गाजियाबाद (ऊ. प्र.) - 201010

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

011-6000 4242

पत्रिका न मिलने पर डायल करें: 0120 6678 788 या
ई-मेल करें rakesh.mohanty@hindustantimes.com

KADAMBINI (84 PAGES) RNI NO. 4983/60 POSTAL REG. NO. DL(ND)-11/6061/2018-19-20
(Published on 26-06-2020) ['LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT' LICENCE NO. U(C)–114/2018-20]

हिन्दुस्तान

Live हिन्दुस्तान.com

जागरूक रहें सुरक्षित रहें

अब पाएं अपने शहर के साथ-साथ देश और दुनिया की सभी ताजा व विश्वसनीय खबरें अपने मोबाइल पर। आज ही डाउनलोड करें हिन्दुस्तान अखबार का मोबाइल ऍप गूगल प्ले स्टोर से या नीचे दिए गए QR कोड को स्कैन करें।

Live हिन्दुस्तान.com
Mobile App

गूगल प्ले पर उपलब्ध

GET IT ON Google Play

हिन्दुस्तान
तरक्की का नया नजरिया

आजकल पूरी दुनिया अपने आपको थोड़ा-थोड़ा रोज बदल रही है। यह बदलना हर स्तर पर जारी है। चाहे वह व्यक्ति के रूप में हो या फिर समाज के स्तर पर। चाहे वह चलना-फिरना हो, आना-जाना हो, रहन-सहन, खान-पान हो या फिर तौर-तरीके या सलीके। सब कुछ बदल रहे हैं। यह बदलना अच्छा है या बुरा, यह वक्त बताएगा। फिलहाल, यह आज के समय की मांग है। अगर हम इसके हिसाब से नहीं बदले तो खुद इतिहास हो जाएंगे। यह बदलना हमारी मर्जी से नहीं हो रहा है। हमें बदलने पर मजबूर किया गया है। यह मजबूर किया है—'कोरोना वायरस' ने। पांच-छह महीने पहले हम सबकी जिंदगी आराम से चल रही थी। अचानक 'कोरोना' हमारे जीवन में आता है और एकाएक सब कुछ बदलने लगता है। अगर हमें जीना है तो जिंदगी को हालात के हिसाब से ढालना सीखना होगा। वरना जिंदगी तो आंकड़ों के रूप में रोज बदल ही रही है। आज मेरी, तो कल तेरी, परसों किसी और की बारी है। लेकिन मायूस होना जिंदगी नहीं है। जिस तरह पानी पत्थर के नीचे से भी अपना रास्ता निकाल लेता है, उसी तरह जिंदगी भी मौत के आगोश से सांस लेती हुई एक नई दुनिया में आ ही जाती है। यह नई दुनिया ही उसकी बदली हुई दुनिया होती है, जो उसे जीने के नए रंग-ढंग सिखाती है। दरअसल, बदलना इनसान की फितरत भी है और जरूरत भी। अगर आप जिंदा हैं तो आपमें हरकत जरूर होगी। यह हरकत ही आपसे हर पल कुछ नया करवाती है। सभ्यता और संस्कृति का विकास इसी बदलने से होता है। पाषाण युग से लेकर आज की आधुनिक सभ्यता इसकी गवाह है। यह बदलाव व्यक्ति से लेकर समाज तक कई स्तरों पर होता है। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक इनसान कई बार बदलता है। भले ही उम्र का यह बदलाव उसके हाथ में नहीं होता। इसके बावजूद बहुत कुछ वह खुद भी बदलता है।

बहरहाल, कोरोना ने बहुत कुछ बदल दिया है। पर्यावरण से लेकर इनसान के भीतर की दुनिया तक। घर, अब सिर्फ घर नहीं रहे। वे ऑफिस बनते जा रहे हैं। समाज में जीनेवाले, अब अपने भीतर सिमटने लगे हैं। मिलते ही प्यार से गले लगना और एक-दूसरे को चूमना अब मन में डर पैदा करने लगा है। शिक्षा के मंदिर से लेकर बाजार की भीड़ तक अब 'ऑनलाइन' होते जा रहे हैं। '...ये नए मिजाज का शहर है, जरा फासले से मिला करो', शेर की तर्ज पर कभी करीब से मिलनेवाले अब सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करने लगे हैं। हर चीज, हर शै वर्चुअल होती जा रही है। चाहे वह कूटनीति की दुनिया हो, या राजनीति का मैदान। और तो और सुनहरे सपने दिखानेवाली फिल्मी दुनिया, अब खुद सपना देख रही है कि उसके लिए आनेवाले दिन कैसे होंगे? फिर भला साहित्य इस बदलती हुई दुनिया से कैसे अलग होगा? बदलेगी, अभी और बदलेगी दुनिया। बस, देखनेवाली बात यह है कि कितनी और कैसे?